सम्पूर्ण पवित्रता, सुख और शान्ति की प्राप्ति के लिये

साप्ताहिक पाठ्यक्रम



प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय
पाण्डव भवन, माउण्ट आबू

स्वयं परमपिता परमात्मा शिव ने प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा जो ज्ञान दिया और दे रहे हैं, उसे ही इस पुस्तक के रूप में संकलित और सम्पादित किया गया है।

प्रकाशक:
साहित्य विभाग,
प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय
१९/१७, शक्ति नगर, दिल्ली-७
फोन: ७१२८४७७, ७१२०७१२

पुस्तक मिलने का पता:
बी ९/१९, कृष्णा नगर,
दिल्ली-११००५१
फोन: २२१३७४१, २२०५९८५

मुद्रक [illegible] प्रैस बी ७/२७, कृष्णा नगर, दिल्ली-५१

सम्पादकीय

ईश्वरीय ज्ञान का साप्ताहिक अध्ययन-क्रम

भारत में सप्ताह का बड़ा माहात्म्य है। यहाँ लोग प्रायः अपने घर में 'भागवत् सप्ताह', 'गीता सप्ताह' आदि के नाम से एक सप्ताह का प्रोग्राम रखा करते हैं। सोचने की बात है कि यह प्रथा शुरू कब से और क्यों हुई?

विवेक और अनुभव यह कहता है कि पहले जब भगवान् ने प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा ईश्वरीय ज्ञान सुनाया होगा तब वह ज्ञान संक्षेप में अन्य लोगों को मौखिक रूप से सुनने के लिये ब्राह्मणों को एक सप्ताह का समय लगा करता होगा, परन्तु बाद में जब लम्बे-चौड़े ग्रन्थ रचे गये तब उन्हें भी लकीर के फकीरों ने सात खण्डों में बाँटकर सुनाने की प्रथा चला दी। फिर दूसरे धर्म वालों ने, जैसे कि सिक्ख भाइयों ने भी इसे अपना लिया। परन्तु बाद में न तो आदम (Original) और वास्तविक ज्ञान का वह शुद्ध सार रहा जो कि स्वयं भगवान् ने सुनाया था, न ब्रह्मा-मुख द्वारा पैदा हुए वह सच्चे योग-युक्त ब्राह्मण रहे, न ही सुनने वालों की सच्ची जिज्ञासा रही, न वे सप्ताह-भर ज्ञान-चर्चा के लिए निर्धारित नियमों का पालन करते थे। केवल ग्रन्थों के साप्ताहिक पाठ की प्रथा या परिपाटी ही चली आयी।

अब तो कलि का अन्त आ चुका है और भगवान् शिव फिर से स्वयं प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा जो आदि सनातन, सच्चा ज्ञान वर्तमान समय दे रहे हैं, वही ज्ञान ब्रह्मा-मुख द्वारा पैदा हुए ब्राह्मण एक सप्ताह में सार के रूप में जिज्ञासुओं को सुनाते हैं। मौखिक रूप में सुनाये जाने वाले उस अनुभव-गत ईश्वरीय ज्ञान को ही मैंने यहाँ सहज और आम बोलचाल की भाषा में सम्पादित किया है। आशा है कि जिज्ञासु इसे गुणग्राहक दृष्टि से पढ़कर पूरा-पूरा लाभ उठायेंगे और अधिक जानने के लिए, योग की विधि को प्रैक्टीकल रीति से सीखने केलिये तथा मनोविकारों पर विजय प्राप्त करने की अन्य युक्तियाँ जानने के लिए चेष्टा और पुरुषार्थ करेंगे।

इस 'सप्ताह के कोर्स' (Course) से पूरी तरह लाभ उठाने के लिए कुछ नियमों का पालन करना आवश्यक है। जिज्ञासु को चाहिए कि इन सात दिनों में वह ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करे, सभी को आत्मिक-दृष्टि से देखे, सात्यिक आहार करे, विकारी लोगों के द्वारा बना हुआ भोजन न खाये और बुरे संग से बचकर रहे। इन नियमों का पालन करने से उसे निश्चय ही ज्ञान-लाभ होगा।

वास्तव में चाहिये तो यह कि मनुष्य एक सप्ताह तक परमपिता परमात्मा की **अखण्ड स्मृति और आत्मा-निश्चय** (Soul-consciousness) का **निरन्तर अभ्यास** करे और इसी ज्ञान ही के **श्रवण**, मनन तथा धारण करने के पुरुषार्थ में लगा रहे, दिव्य गुणों का चिन्तन करके उन्हें अपने जीवन में लाये, कम और धीमे स्वर से बोले और किसी भी विकार से स्वयं को एक बार भी प्रभावित न होने दे। यही इस ज्ञान का **अखण्ड-पाठ** है और यहीं से '**अखण्ड**' पाठ का रिवाज़ चला है। परन्तु देखा जाय तो **अखण्ड-योग** और अखण्ड पवित्रता ही सही अर्थों में अखण्ड-पाठ है। आशा है कि इस प्रकार नियमपूर्वक इस ईश्वरीय ज्ञान को **सुनने, पढ़ने, मनन करने, धारण करने** तथा **योग लगाने** से मनुष्य को जीवन में पवित्रता, सुख और शान्ति का ऐसा अनुभव होगा कि वह स्वयं को बहुत ही धन्य-धन्य मानेगा।

—जगदीश चन्द्र

अमृत-सूची

पहला दिन, पाठ–१

आप कौन हैं, कहाँ से आये हैं और आपको जाना कहाँ है?

दूसरा दिन, पाठ–२

परमात्मा कौन है?

तीसरा दिन, पाठ—३

परमात्मा क्या करता है और क्या नहीं करता?

चौथा दिन, पाठ—४

मनुष्य-सृष्टि रूपी विराट रचना

पाँचवाँ दिन, पाठ—५

मनुष्यात्माओं के ८४ जन्मों की अथवा उत्थान और पतन की कहानी

छठा दिन, पाठ—६

भारतवासियों के धर्म का वास्तविक नाम

सातवाँ दिन, पाठ—७

भारत का सर्व-प्राचीन सहज राजयोग

पाठ—८

ईश्वरीय मत और मनुष्य मत में अन्तर

अन्तिम पाठ

ईश्वरीय विश्व-विद्यालय की क्लास

साप्ताहिक पाठ्यक्रम से पहले

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय में जब कोई व्यक्ति एक सप्ताह ईश्वरीय ज्ञान एवं योग के अध्ययन के लिये आता है तो यहाँ पहले उसे एक प्रपत्र भरने के लिये दिया जाता है। यह प्रपत्र इस विश्व-विद्यालय का 'प्रवेश-पत्र' या कोई 'आवेदन-पत्र' नहीं होता बल्कि जिज्ञासु के परिचय से सम्बन्धित प्रपत्र होता है। इसी के आधार पर ही आत्मा, परमात्मा इत्यादि विषयों की चर्चा शुरू होती है। अतः पाठक यदि पाठ्यक्रम प्रारम्भ करने से पहले अपने परिचय का इस प्रकार का एक प्रपत्र भर लें, जैसे कि पृष्ठ १२ पर दिया गया है, या पृष्ठ १२ पर भरे जिज्ञासु-परिचय-पत्र को ध्यान में रखते हुए पहले दिन के पाठ से पुस्तक को पढ़ना प्रारम्भ करें तो अच्छा होगा। संसार में हरेक मनुष्य के अपने-अपने विचार हैं, अपनी-अपनी मान्यतायें हैं। इस प्रपत्र को भरने से जिज्ञासु की अपनी मान्यतायें स्थिर हो जाती हैं और उसी दृष्टिकोण से उसे समझाना भी सहज होता है तथा उसके लिये भी समझना सहज होता है। वरना, बहुत-से जिज्ञासुओं ने अनेक मतों का श्रवण अथवा अध्ययन कर रखा होता है और उनके अपने मन में भी स्पष्ट नहीं होता कि आख़िर उनका अपना मन्तव्य क्या है? अतः परिचय-प्रपत्र भरने से समझना और समझाना सहज होगा। इसी उद्देश्य से हम अगले पृष्ठ पर जिज्ञासु परिचय-प्रपत्र दे रहे हैं।

—'संजय'

आप कौन हैं, कहाँ से आये हैं

और आपको जाना कहाँ है?

ब्रह्माकुमारी—आपका नाम क्या है?

जिज्ञासु—सुन्दरलाल।

ब्रह्माकुमारी—परन्तु यह आपका नाम थोड़े ही है? मैं तो आपका नाम पूछ रही हूँ?

जिज्ञासु—बहन जी, मेरा ही तो नाम सुन्दरलाल है।

ब्रह्माकुमारी—नहीं, यह आपका नाम नहीं है। यह तो आपके शरीर का नाम है। आप शरीर थोड़े ही हैं, आप तो एक **आत्मा हैं न?**

देखो कितने आश्चर्य की बात है कि आज मनुष्य स्वयं को भी नहीं जानता। एक छोटे-से बच्चे से भी यदि पूछें कि—"तुम्हारा क्या नाम है और तुम्हारे पिता का क्या नाम है और तुम्हारा धाम कौन-सा है?", तो वह भी बता देगा, परन्तु आज मनुष्य इतना भूला है कि न वह स्वयं को जानता है, **न अपने** पिता परमात्मा को ही पहचानता है! तभी तो उसका यह हाल हुआ है।

आज यदि हम लोगों से यह **प्रश्न** करते हैं कि—"आप कौन हैं?" तो एक कहता है कि 'मैं डाक्टर हूँ', दूसरा जवाब देता है कि 'मैं वकील हूँ', तीसरा बतलाता है कि 'मैं एक व्यापारी हूँ', चौथा उत्तर देता है कि 'मैं एक इंजीनियर हूँ', परन्तु वे सब यह नहीं सोचते कि ये तो वास्तव में शरीर में आने के बाद के हमारे व्यावसायिक नाम (Professional names) हैं; हम जो कि इस शरीर द्वारा यह धन्धे करते हैं, हम इनसे भिन्न हैं, क्योंकि जब हम डॉक्टर, वकील, व्यापारी या इंजीनियर का धन्धा नहीं करते थे अर्थात् जब हमारा शरीर अभी लड़कपन की अवस्था में था, तब भी 'हम' तो विद्यमान थे ही और जब हम यह धन्धा छोड़ेंगे और यह शरीर वृद्ध हो जायेगा तब भी हम तो होंगे ही। अतः स्पष्ट है कि वे इस प्रश्न का सही उत्तर नहीं देते कि शरीर रूपी साधन का आधार लेकर इन धन्धों को करने वाला 'मैं' स्वयं कौन हूँ?

मनुष्य यों तो सारा दिन अपने वार्तालाप में कहता है—**'मैं'** अमुक कार्य करता हूँ, 'मैं' फलाँ स्थान पर रहता हूँ, आदि, परन्तु यह **मैं...मैं** कहने वाला वास्तव में है **'कौन'**, इसे वह नहीं जानता।

वास्तव में,...'मैं' और 'मेरा' दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं। 'मैं' है आत्मा और 'मेरा' शरीर तो उसका रहने का स्थान है। आप किसी कमरे में बैठे हैं तो आप यह थोड़े ही कहेंगे कि–''मैं कमरा हूँ?'' इसी प्रकार, आप शरीर नहीं हैं, शरीर तो आपका घर है अथवा आपकी कुटिया है। जैसे–कोई ड्राईवर मोटर-कार में बैठा होता है और उसे चलाता है, परन्तु वह स्वयं तो उससे अलग होता है। इसी प्रकार, आत्मा तो ड्राईवर अथवा रथवान है और यह शरीर उसका रथ है। आत्मा ही कान द्वारा सुनती, मुख द्वारा बोलती और आँखों द्वारा देखती है। तो आप 'आत्मा' हैं, न कि 'शरीर'। शरीर या कर्मेन्द्रियाँ तो आपके लिए कर्म करने के साधन हैं। आत्मा ही मानो हीरा है, शरीर तो मानो उस हीरे के लिए एक डिब्बा है।

मैं कौन हूँ?

यह तो सर्व-विदित है कि यह शरीर पाँच तत्त्वों का पुतला है। यह शरीर तो एक






[illegible] अविनाशी [illegible] ड्राइवर [illegible]

यंत्र-समूह हैं जिसके द्वारा मैं बोलता सुनता, देखता और चलता-फिरता हूँ, परन्तु मैं स्वयं इससे अलग, इसका प्रयोग करने वाली हूँ। जैसे टेलीफोन द्वारा बोलने तथा सुनने वाला व्यक्ति टेलीफोन रूपी साधन अथवा यन्त्र से अलग, एक अनुभवशील, विचारवान चेतन प्राणी होता है, वैसे ही मैं भी मुख, कान, आँख आदि साधन समूह अथवा पिण्ड से अलग ही एक चेतन हूँ। '**मैं**' अलग हूँ, यह शरीर '**मेरा**' हैं। '**मैं**' आँख, कान या मुख नहीं हूँ बल्कि आँख द्वारा देखने वाला, मुख द्वारा बोलने वाला, कान द्वारा सुनने वाला, मैं इन सबका स्वामी हूँ। मैं एक अनादि-अविनाशी आत्मा हूँ, शरीर तो एक विनाशी चीज है, यह तो हमें कर्म करने और भोगने के लिए मिला है परन्तु इस द्वारा कर्म करने और भोगने वाला मैं आत्मा अजर और अमर हूँ।

आत्मा जब शरीर को छोड़ जाती है तो यह शरीर '**मुर्दा**' कहलाता है। तब लोग उसे जलाने की सोचते हैं क्योंकि उसमें जो मूल्यवान वस्तु (आत्मा) थी वह निकल गई तो फिर शरीर किस काम का ? तब लोग प्रायः यही कहते हैं कि–'इसमें से ज्योति चली गई है (The light has gone), प्राण निकल गया है, और खेल खत्म हो गया है।'

आत्मा क्या वस्तु है?
मन, बुद्धि और संस्कार क्या हैं?

आत्मा एक चेतन वस्तु है। आत्मा को '**चेतन**' इसी कारण कहा जाता है कि वह **सोच-विचार** कर सकती है, दुःख-सुख का तथा शान्ति और आनन्द का अनुभव कर सकती है और अच्छा या बुरा बनने का पुरुषार्थ अथवा कर्म कर सकती है। अतः आत्मा मन, बुद्धि और संस्कारों से अलग नहीं है। बल्कि '**मन**' स्वयं आत्मा ही के संकल्प का अथवा दुःख-सुख के अनुभव का अथवा इच्छा या '**कामना**' का नाम है। '**बुद्धि**' **स्वयं** आत्मा ही के निर्णय, विचार, विवेक-शक्ति या ज्ञान का नाम है और '**संस्कार**' स्वयं आत्मा द्वारा किये हुए अच्छे या बुरे कर्मों का आत्मा पर पड़े प्रभाव का नाम है। यों भी कह सकते हैं कि अच्छे या बुरे कर्म करने से आत्मा की जो वृत्ति बनती है या जो उसका दृष्टिकोण (Attitude) बनता है, उनका नाम संस्कार या स्वभाव (स्व + भाव) है।

अतः आत्मा को मन, बुद्धि और संस्कारों से अलग मानना तो गोया आत्मा को चेतन न मानना अर्थात् उसे जड़ मानना होगा। चेतन आत्मा में और जड़ प्रकृति में

तो अन्तर है कि प्रकृति में **इच्छा, विचार, प्रयत्न और अनुभव** आदि लक्षण हैं परन्तु आत्मा में ये सभी लक्षण हैं। जिस आत्मा में इच्छा, प्रयत्न और ुभव शुद्ध अथवा सात्विक हैं वह 'महात्मा', पुण्यात्मा या 'पावन आत्मा' हलाता है और जिसमें यह अशुद्ध अथवा तामसिक हैं, वह 'पापात्मा', 'दुरात्मा' या पतित आत्मा' कहलाता है। आत्मा ही के अच्छे या बुरे होने के कारण ही कहा जाता है कि—'आत्मा अपना शत्रु आप है और अपना मित्र भी आप ही है।'

तो मालूम रहे कि आज लोग मन को स्वयं आत्मा से अलग मानकर मन पर जो इस प्रकार के दोष देते हैं मन बड़ा चंचल है, यह काबू में नहीं आता, मन बड़ा नीच है, यह पापी है वे गोया अपने को निर्दोष मानने और दोष दूसरे के सिर पर मढ़ने के लिए ही मन को आत्मा से अलग मानते हैं। यही उनकी भूल है। वास्तव में यह आत्मा ही पतित हो गया है और इसे अब पावन बनाना है। अतः मनुष्य को यह नहीं सोचना चाहिए कि— क्या करूँ, यह मन बड़ा धोखा देता है, यह इधर-उधर भाग जाता है और मुझे भटकाता है, यह बुराई की ओर ले जाता है...." आदि आदि बल्कि अब यह सोचना चाहिए कि— बुरा या भला सोचने तथा करने वाला मैं स्वयं आत्मा ही हूँ और अब से मैं ही यह निर्णय करता तथा प्रण करता हूँ कि अब मैं बुरा कर्म नहीं करूँगा। मेरे पूर्वाभ्यास के कारण यदि कभी मे द्वारा [illegible] भी लगेगा या कभी अशुद्ध संकल्प उठेगा भी तो अब मैं ज्ञान-बल स्वयं ही इस [illegible] का अभ्यास करके अपनी वृत्ति, दृष्टि और कृति को प बना दूँगा। अब तक मैं मन, बुद्धि और संस्कारों को अपने से अलग मानकर छूट देता रहा हूँ और परिणामस्वरूप दुःख तथा अशान्ति भोगता रहा हूँ। प अब से लेकर मैं समझ गया हूँ कि सोचनेवाला मैं स्वयं ही हूँ, अतः अब मैं सोचूँगा भी नहीं और करूँगा भी नहीं।

जिज्ञासु—अब तक तो हम यही सुनते आये हैं कि मन और बुद्धि आत्मा से और फिर यह सूक्ष्म प्रकृति का बना हुआ सूक्ष्म शरीर है।

ब्रह्माकुमारी—भला विचार करो कि प्रकृति कैसे सुख की अथवा आनन्द की इच्छा कर सकती है और वह कैसे शान्ति अथवा प्रेम का अ सकती है और बुरे-भले में भेद करके कैसे **निर्णय** कर सकती है? प्रकृति

जिज्ञासु—हाँ, यही बात मैं भी सोचता हूँ। परन्तु लोग कहते हैं कि अवस्था में चाहे इच्छा और संकल्प का मन नहीं रहता इसीलिए म अन्तर है।

ब्रह्माकुमारी—मुक्ति की अवस्था में मन आत्मा ही में लीन अर्थात् अव्यक्त अथवा बीज अवस्था में होता है। तब आत्मा को कोई कर्म ही नहीं करना होता और उसे शरीर भी प्राप्त नहीं होता, इसलिए मन अव्यक्त रहता है। वरना आप सोचिये कि यदि मुक्ति की अवस्था में मन हो ही न, तो आत्मा '**चेतन**' कैसे कहला सकेगी और वह फिर इस सृष्टि में कैसे आयेगी? इसके अतिरिक्त, आप विचार कीजिये कि परमात्मा को तो सभी लोग **ज्ञान** का सागर, शान्ति का सागर, प्रेम का सागर और सर्वशक्तिमान् मानते हैं। तो बुद्धि में ही तो ज्ञान होता है अथवा ज्ञान ही तो बुद्धि है और शान्ति, आनन्द, प्रेम आदि का आधार मन ही तो है। स्पष्ट है कि स्वयं परमात्मा जो कि ज्ञान, शान्ति, आनन्द और प्रेम का सागर है, मन-बुद्धि से अलग नहीं बल्कि उसके मन-बुद्धि परम उत्कृष्ट और एकरस हैं जबकि अल्पज्ञ आत्माएँ एकरस नहीं हैं और उनकी अल्पज्ञता के कारण उनके कर्म-विकर्म बनने से उन्हें अशान्ति, दुःख-द्वेष आदि का भी अनुभव होता है। तो यह अनुभूति आत्मा ही को होती है, न कि आत्मा से अलग किसी जड़ मन को।

मन तथा बुद्धि आत्मा ही की चेतना की विभिन्न अभिव्यक्ति के नाम हैं

आप जानते हैं कि एक व्यक्ति जब किसी न्यायालय में मुकदमा सुनता और उस पर निर्णय देता है तो उसे न्यायालय में लोग '**न्यायाधीश**' कहते हैं, फिर जब वह घर लौटकर अपने बच्चों से '**प्यार**' करता है तो बच्चे उसे 'पिता' कहते हैं और वही व्यक्ति जब अपने मित्रों में बैठता है तब वे उसे '**मित्र**' अथवा '**दोस्त**' शब्द से सम्बोधित करते हैं। मनुष्य एक ही है परन्तु कर्त्तव्य-भेद से, सम्बन्ध-भेद से अथवा अधिकार-भेद से उसके भिन्न-भिन्न नाम पड़ जाते हैं। इसी प्रकार, आत्मा जब संकल्प, इच्छा या कामना करती है तब हम कहते हैं कि 'हमारा तो **मन** ऐसा चाहता है' और जब आत्मा किसी परिस्थिति के सामने आने पर उस पर विचार करती है तो कहा जाता है कि 'हमारी **बुद्धि** ऐसा निर्णय देती है'। वास्तव में आत्मा की इच्छा, कामना, कल्पना या अनुभूति का नाम ही 'मन' है और आत्मा के विचार, निर्णय, धारणा, ज्ञान, स्मृति आदि का नाम ही 'बुद्धि' है।

मन-बुद्धि का मस्तिष्क से अन्तर

जिज्ञासु—कई लोग कहते हैं कि मस्तिष्क अथवा ब्रेन (Brain) ही सोचता, इच्छा करता तथा शरीर द्वारा काम करता है। यह बात कहाँ तक ठीक है?

ब्रह्माकुमारी—ब्रेन अथवा मस्तिष्क आत्मा का कन्ट्रोल रूम (नियन्त्रणालय) है। जैसे मोटर-कार में एक स्थान पर बैठा ड्राईवर विभिन्न यन्त्रों द्वारा कार को चलाना, रोकना, उसकी रफ्तार को देखना, उसे मोड़ना, पीछे या सामने से आने वाले लोगों या गाड़ियों को देखना है, वैसे ही आत्मा भी मस्तिष्क द्वारा सारे शरीर पर नियन्त्रण करना तथा शरीर के किसी भी भाग को कार्य में लगाता है। जैसे बोलने के लिए मुख ही यन्त्र है, उसी प्रकार सोचने, याद करने, कर्मेन्द्रियों को निर्देशन देने या कर्मेन्द्रियों का सन्देश प्राप्त करने के लिए मस्तिष्क ही आत्मा के पास यन्त्र है। सारे शरीर के किसी भी भाग में हुए किसी भी संवेदन (Sensation) को नियन्त्रणालय (Control room) में पहुचाने वाले जो स्नायु (Nerves) हैं, वे सभी मस्तिष्क में ही आकर मिलते हैं। आत्मा वहां मस्तिष्क में उन स्नायुओं द्वारा ही शरीर को काम में लगाती है और शरीर के किसी संवेदन (Sensation) अथवा दुःख-सुख का अनुभव करती है। परन्तु मस्तिष्क आत्मा से तो अलग चीज है। मस्तिष्क प्रकृति-जन्य है, आत्मा चेतन है।

जिज्ञासु—आत्मा शरीर में कहाँ रहती है?

आत्मा कहाँ रहती है?

ब्रह्माकुमारी—आत्मा शरीर में भृकुटि में रहती है। इसलिए भृकुटि पर टीका लगाने की प्रथा है। वास्तव में तो हमें आत्मा के स्वरूप में टिकना चाहिए लेकिन भक्त लोग टीका लगा देते हैं। माताओं में बिन्दी लगाने की प्रथा भी वास्तव में इसी रहस्य का परिचय देती है कि बिन्दु रूप आत्मा भृकुटि में रहती है।

यह कहावत भी है कि—'भृकुटि के बीच चमकता है एक अजब सितारा।' जब मनुष्य कुछ विचार नहीं कर पाते और अपनी बुद्धि को टटोलते हैं तो भी वे यहीं हाथ रखते हैं। जब वे अपने भाग्य, प्रारब्ध अथवा नसीब को बुरा-भला कहने लगते हैं तब भी वे यहीं हाथ रखते हैं क्योंकि कर्ता-भोक्ता आत्मा स्वयं यहां ही है।

आत्मा का रूप क्या है?

यह जो ज्योतिस्वरूप आत्मा है, यह अत्यन्त सूक्ष्म एक ज्योति-कण के समान है। जैसे आकाश में चमकता हुआ एक तारा पृथ्वी पर रहने वाले हम लोगों को एक चमकता हुआ बिन्दु-सा ही प्रतीत होता है, वैसे ही आत्मा एक ज्योति-बिन्दु अथवा चेतन ज्योति-कण ही है जो कि शरीर में भृकुटि के बीच वास करती है। जब तक यह शरीर में है और शरीर के मस्तिष्क आदि भाग कार्य करते हैं तब तक मनुष्य

[परमधाम का वासी; आया देश बेगाने।

तीन लोक

या 'विराट नाटक-शाला' भी कहा गया है क्योंकि इस लोक में आकर आत्मा स्थूल अर्थात् हड्डी-माँस का शरीर धारण करती है और कर्म करती अथवा सुख-दुःख का खेल खेलती है। वह जैसा कर्म करती है, वैसा फल भी भोगती है। इस लोक में जन्म-मरण, सुख-दुःख कर्म-विकर्म, संकल्प, वचन आदि सभी हैं। इस लोक में सदा यह विराट सृष्टि-नाटक (Movie-Talkie; **world Drama**) चलता ही रहता है।

देवताओं का सूक्ष्म लोक कहाँ है?

[illegible] आकाश तत्त्व के भी पार एक [illegible] अपनी अपनी सूक्ष्म पुरियों में वास [illegible] सूक्ष्म लोक [illegible] देवताओं की दुनिया भी कहते हैं [illegible] हमारी तरह कोई स्थूल अर्थात् हड्डी-[illegible] प्रकाशमय काया है जो कि इन स्थूल [illegible] लोक को दिव्य-चक्षु द्वारा ही देखा जा सकता है। [illegible] तरह जन्म मरण या दुःख नहीं होता, न ही [illegible] है परन्तु आवाज नहीं होती। अतः वहाँ [illegible] (Movie World) है वहाँ आवाज [illegible] नहीं है

परमधाम, ब्रह्मलोक, परलोक या निर्वाणधाम कहाँ है?

सूक्ष्म देवलोक के भी पार एक अन्य लोक है। उस लोक को परमधाम, ब्रह्मलोक अथवा परलोक भी कहा जाता है। यहाँ न स्थूल शरीर होता है, न सूक्ष्म, न संकल्प होता है, न वचन और न कर्म। इसलिए, वहां न सुख होता है, न दु:ख, न जन्म और न मरण बल्कि वहाँ शान्ति ही शान्ति है। इसलिए इसे शान्तिधाम, मुक्तिधाम या निर्वाणधाम भी कहा गया है। यहाँ पर एक ज्योति तत्त्व व्यापक है जिसे 'ब्रह्म' कहते हैं। यह ब्रह्म तत्त्व चेतन नहीं है बल्कि प्रकृति का छठा तत्त्व है जो सत्, रज और तम से न्यारा है।

आवागमन के चक्कर को जाननेवाले, अजन्मा एवं त्रिकालदर्शी परमपिता परमात्मा शिव ने अब हमें यह अति गुह्य रहस्य समझाया है कि वास्तव में सूर्य और तारागण के भी पार, इस अखण्ड ज्योति ब्रह्म तत्त्व में ही आत्माएं अशरीरी अर्थात् देहरहित अवस्था में, संकल्प-विकल्प रहित, दु:ख-सुख तथा जन्म-मरण से न्यारी अवस्था जिसे कि **'मुक्ति की अवस्था'** कहा जाता है, में रहती हैं। वहाँ से ही आत्माएँ इस सृष्टि रूपी रंगशाला (Theatre) में अपना-अपना पार्ट बजाने आती हैं और पार्ट के अनुसार देह रूपी वेश-भूषा धारण करती हैं। जैसे आकाश से कोई तारा टूटकर पृथ्वी पर आ गिरता है, वैसे ही आत्मा को जब इस सृष्टि के सुख-भोग के लिए आना होता है तो वह मुक्तिधाम को छोड़कर इस लोक में प्रवेश करती है और माता के गर्भ में स्थूल देह को अपना बसेरा बनाती है। फिर वह जैसे कर्म करती है, तदानुसार ही उसका फल भोगती है।

इस रहस्य को जानकर अब आप अपने वास्तविक स्वरूप और धाम को पहचानो। इस प्रसंग में हमें एक उदाहरण याद आता है—

मनुष्यात्मा स्वयं को भूली कैसे?

कहते हैं कि एक राजा का महल जंगल के निकट था। एक दिन राजकुमार खेल रहा था कि उसे भेड़िये उठा ले गए। वह राजकुमार भेड़ियों के झुण्ड में फँसकर, उनके पास ही पलने और बढ़ने लगा। बहुत काल के बाद, एक दिन राजा जंगल में शिकार करने गया तो उसने देखा कि एक मानव-शिशु भी भेड़ियों के झुण्ड में है। उसने सोचा कि भेड़िये शायद उसे नगर से कभी उठा लाये होंगे। घोड़े पर सवार राजा ने भेड़िये का पीछा करके शिशु (राजकुमार) को उनके पंजे से छुड़ाया और उसे अपने घोड़े पर बिठाकर नगर की ओर लौटा। राजकुमार बड़ा हो गया था और जंगल में

उसकी आकृति-प्रकृति बदल गई थी। उसके नाखून बहुत बड़े हो गए थे; बाल लम्बे, मैले और चेहरा मिट्टी से भरा था। वह भेड़ियों की तरह शब्द करता था, मानो कि भेड़ियों के संग में भी भेडिये-जैसा ही हो गया था। देखते-देखते, राजा के मन में आया कि यह तो वही राजकुमार है जो गुम हो गया था।

वह महल में पहुँचा तो दूसरों ने जब उसे देखा, तब वे भी राजा से सहमत हुए और कहने लगे कि यह वही राजकुमार है। तब उसे नहलाया-धुलाया गया। राजकुमारों की तरह उसे साफ और सुन्दर वस्त्र पहनाए गए और उसके लिए एक शिक्षक नियुक्त किया गया जो कि उसको बोलना चलना तथा व्यावहारिक शिक्षा देने लगा। शिक्षक उसमें यह भाव सुदृढ़ करने की चेष्टा करता रहा कि—"तुम भेड़िये नहीं हो, जंगल के निवासी नहीं हो बल्कि राजकुमार हो; इस जंगल और नगर पर तुम्हारे पिता का ही राज्य है।" इसी प्रकार की शिक्षा से कुछ समय के पश्चात् उस राजकुमार के रहन-सहन खान-पान बातचीत आदि में बहुत परिवर्तन आ गया। अब वह इस नशे में रहता था कि—"मैं तो एक राजकुमार हूँ।" अब तो उसके ठाट ही बदल गये थे।

इसी प्रकार यह मनुष्यात्मा भी है तो त्रिलोकीनाथ, देवों के भी देव, परमपिता परमात्मा की सन्तान, परन्तु शरीर अथवा कर्मेन्द्रियों के सम्बन्ध में आते-आते यह स्वयं को भी शरीर मानने लगी और उनके विषयों के वशीभूत होकर विकारों में फंसने लगी। इस प्रकार उसका आहार-व्यवहार, खान-पान, रहन-सहन सब बदल गया। परन्तु अब परमपिता परमात्मा यह चेतना देते हैं कि—"हे आत्मा! तुम तो वास्तव में स्वयं त्रिलोकीनाथ परमात्मा ही की सन्तान हो। वास्तव में तो तुम स्वर्ग के दिव्य सुख और शान्ति के महलों में सम्पूर्ण पवित्रता-सुख-शान्ति सम्पन्न राजकुमारी थी, परन्तु जन्म-जन्मान्तर देह के सम्बन्ध में आते-आते देह में ही आसक्त (Attached) हो गई और अपने को भूलकर देह मानने लगी।"

जिज्ञासु—क्या आत्मा एक ही जन्म लेती है या पुनर्जन्म भी लेती है? बहुत-से लोग तो पुनर्जन्म को मानते ही नहीं। वे कहते हैं कि दूसरा जन्म किसने देखा है, यही जन्म सब-कुछ है।

क्या आत्मा पुनर्जन्म लेती है?

ब्रह्माकुमारी—निश्चय ही आत्मा पुनर्जन्म लेती है। आप संसार में देखते हैं कि किसी का जन्म एक सुशिक्षित, सभ्य, कुलीन और धनवान माता-पिता के घर होता है और अन्य किसी का अशिक्षित, असभ्य और निर्धन घराने में। भला बताइये कि

इसका क्या कारण है? बिना कारण के तो कोई भी कार्य नहीं हुआ करता? तो क्या भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में धनवान या निर्धन, रोगी या नीरोगी, स्त्री या पुरुष के रूप में जन्म का होना यह सिद्ध नहीं करता कि हरेक आत्मा के पूर्व-जन्म के कुछ ऐसे कर्म रहे थे कि जिसका फल वह उस जन्म में नहीं भोग सकी और वह शरीर छोड़ने के बाद उसने अपने संस्कारों और कर्मों के अनुसार अब पुनर्जन्म लिया है?

जिज्ञासु—बहन जी, इस जन्म में हमें जो सुख-दुःख होता है, क्या हम ऐसा मानें कि यह सब पूर्व-जन्मों का फल है?

ब्रह्माकुमारी—नहीं, इस जन्म में हम जो सुख-दुःख भोगते हैं, वह कुछ पूर्वकाल के कर्मों के कारण से होता है और कुछ वर्तमान जन्म में किये कर्मों का फल होता है।

जिज्ञासु—बहन जी, अगर आत्मा पुनर्जन्म लेती है तो उसे पूर्व जन्म की याद क्यों नहीं रहती?

ब्रह्माकुमारी—पूर्व जन्म की क्या कहें, आत्मा इस जन्म की भी बहुत-सी बातें भूल जाती है। जैसे आत्मा में स्मृति की भी योग्यता है, वैसे ही विस्मृति का होना भी तो अल्पज्ञ आत्मा का स्वभाव है। आप देखते हैं कि कई बार तो मनुष्य महीना-दो-महीने पहले की बात भी भूल जाता है। वैसे ही निद्रा के बाद, दिमागी चोट या सदमे (Shock) के बाद, मूर्छा के बाद, स्थान, सम्बन्ध और परिस्थितियों के बदलने के बाद भी मनुष्य को कई बातें भूल जाती हैं। इसी प्रकार, मौत भी एक ऐसी ही घटना है जिसके बाद मनुष्य बहुत-सी बातें भूल जाता है और जो उसे याद रहती भी है, वह एक शिशु के रूप में होने के कारण बता नहीं सकता। आपने कई बार देखा होगा कि जन्म लेने के थोड़े समय के बाद शिशु कभी रोता है कभी हँसता है। उसके सामने कोई भी सम्बन्धी या वस्तु न भी हो, तब भी वह हँसता-रोता रहता है। भला बताइये कि उस अवस्था में, जबकि न उसको सम्बन्धियों की पहचान है, न घर के हानि-लाभ या सुख-दुःख का उसे पता है, वह क्यों रोता या हँसता है? स्पष्ट है कि उसे पूर्व-जन्म की बातें याद आती हैं परन्तु अभी मुख द्वारा बोलने के योग्य वह नहीं होता कि वह कुछ बता सके।

फिर भी समाचार-पत्रों में हम बहुत-बार ऐसे समाचार पढ़ते हैं। कुछ बड़े होने पर कई बच्चे अपने पूर्व-जन्म का समाचार देते समय वे यह भी बताते हैं कि उनकी मृत्यु किस कारण से हुई थी, उनके माता-पिता कौन थे और उनका घर कहाँ था?

हाँ, सभी बच्चे नहीं बता सकते कि पूर्व-जन्म में वे कहाँ और किस [illegible] में थे आदि। वास्तव में, पूर्व-जन्मों की बातों का याद न रहना ही अच्छा है

गड़बड़-घोटाला हो जाएगा। उदाहरण के तौर पर मान लीजिए कि कोई मनुष्य बाज़ार में जा रहा है। यदि किसी व्यक्ति को देखकर उसे यह याद आ जाये कि –"उस व्यक्ति ने मुझे पूर्व-जन्म में मारा था।" तो वह तो सब काम छोड़कर वहीं उससे लड़ना शुरू कर देगा। इसी प्रकार कोई बच्चा स्कूल जा रहा है, उसे पूर्व-जन्म की स्मृति आ गई है और उसने पहचान लिया कि फलाँ जो स्त्री-पुरुष जा रहे हैं, ये ही पूर्व जन्म में उसके धनवान माता-पिता थे जो कि उसे बहुत प्यार किया करते थे, तो वह बच्चा तो स्कूल को भूलकर उनको पकड़ लेगा और उनसे ज़िद करने लगेगा कि वे उसे अपने साथ अपने घर में ले जायें और इधर उसके इस जन्म के माता-पिता उसे ढूँढ़ते ही रह जायेंगे। इस प्रकार, पूर्व-जन्मों के हालात मालूम न होना ही अच्छा है वर्ना तो मनुष्य परेशान हो जायेगा और पूर्व-जन्म के वृतान्तों की स्मृति के कारण उसके इस जन्म में भी पुरुषार्थ करने या फल भोगने में बाधा आयेगी।

पूर्व कर्म और पूर्व-जन्म के प्रमाण

जिज्ञासु–हम कैसे मानें कि हमारे पूर्व-जन्मों का कर्म-खाता रहा हुआ है और हमारे पहले भी जन्म हो चुके हैं?

ब्रह्माकुमारी–आपको बताया तो है कि एक व्यक्ति के और दूसरे व्यक्ति के जन्म, परिस्थितियों और घराने आदि में अन्तर का होना यह सिद्ध करता है कि पूर्व-जन्म का लेखा-जोखा रहा हुआ है। दूसरे, आप देखते हैं कि किसी में काम के, किसी में क्रोध के संस्कार होने से भी यह सिद्ध होता है कि उसने पूर्व काल में ऐसे कर्म किये हैं अर्थात् उसके पूर्व-जन्म हुए हैं। फिर किसी को एक मनुष्य से लाभ होता है परन्तु दूसरे को उसी व्यक्ति से हानि होती है। एक को उससे सुख मिलता है दूसरे को उसी से दुःख, इससे भी यही मालूम होता है कि हम कर्मों का कुछ हिसाब लेकर आये हैं, अतः पहले भी हमारे जन्म हुए है।

इसके अतिरिक्त, आप देखते हैं कि एक ही माता-पिता के दो बच्चों में भी रहन-सहन दोनों में भिन्नता होती है। हालाँकि माता-पिता वही हैं, उन्हें खान-पान भी एक-समान ही मिलता है, परन्तु फिर भी दोनों बच्चों के संस्कारों, स्वभाव, भाग्य और पुरुषार्थ में अन्तर होता है। इसका कारण, आप पूर्व-जन्म के कर्म और संस्कार नहीं मानोगे तो और क्या मानोगे?

आप यह भी तो देखते हैं कि कोई व्यक्ति छोटी आयु में ही या सहज ही, किसी विद्या या कला में असाधारण योग्यता प्राप्त कर लेता है और कई तो अध्यापकों तथा

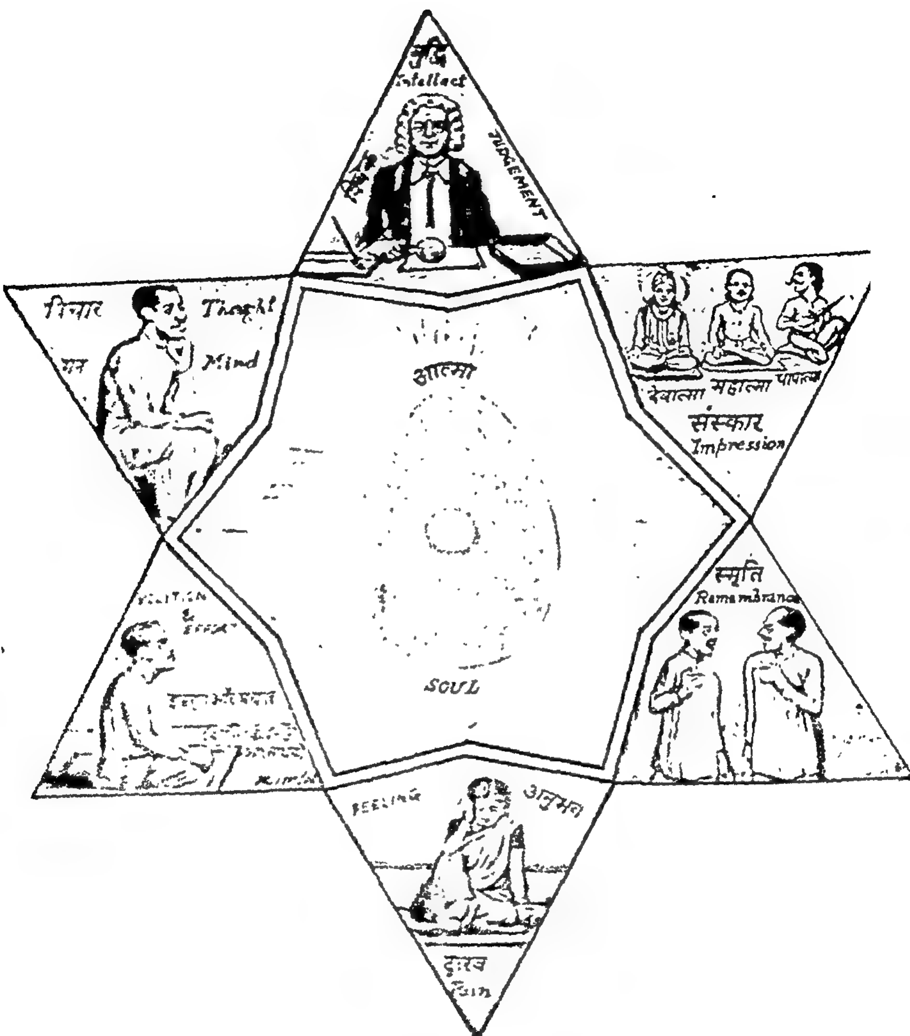
माता-पिता द्वारा मेहनत करने के बाद भी निठल्ले रहते हैं; कोई तो उच्च गायक प्रसिद्ध हो जाता है, कई शास्त्र कण्ठ कर लेते हैं और कई अनपढ़ ही रह जाते हैं परन्तु वे कुशल व्यापारी सिद्ध होते हैं। स्पष्ट है कि जिसने पूर्व-जन्म में जिस कार्य का अभ्यास किया होता है, उसे उसकी सहायता इस जन्म में भी मिलती है।

इसके अलावा, मनुष्य में जो मुक्ति की या सुख-शान्ति की इच्छा रहती है या उसे मौत से जो डर लगता है, उससे भी सिद्ध होता है कि आत्मा ने पहले किसी जन्म में सम्पूर्ण सुख-शान्ति की अवस्था भोगी है; वह पहले मृत्यु का भी अनुभव कर चुकी है और कि वह अनेक बार दुःख भोगने के बाद अब मुक्ति चाहती है। इन सभी बातों से पुनर्जन्म का होना सिद्ध है। शिशु पैदा होने के बाद बिना ट्रेनिंग लिए ही माता से दूध पीने लगता है, उससे भी स्पष्ट है कि वह कई जन्म ले चुका है और यह उसे पूर्वज्ञात है अथवा इसका उसे पूर्वाभ्यास है।

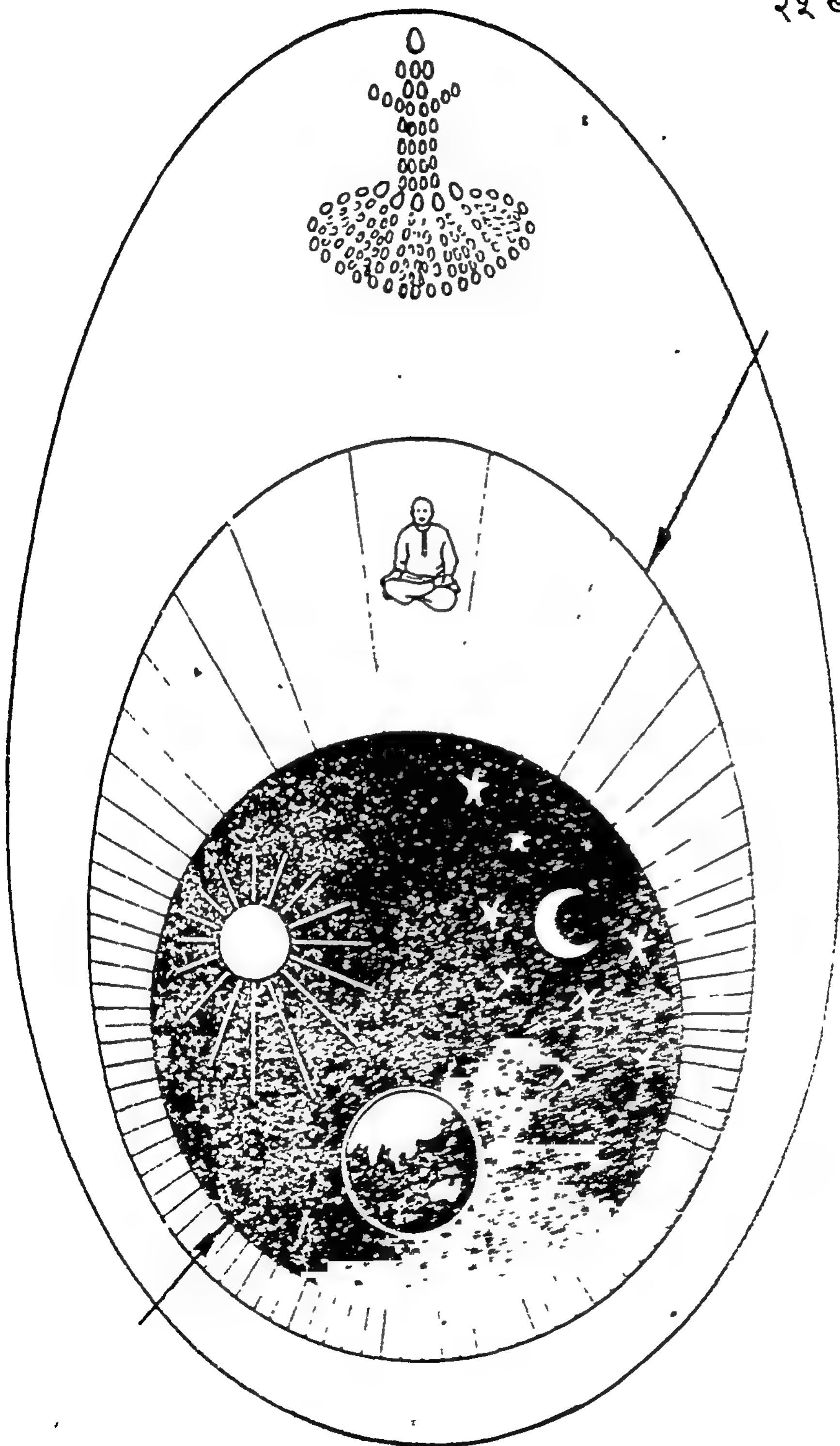
जिज्ञासु—बहन जी, हम आदि सनातन धर्म के लोग तो पुनर्जन्म मानते हैं परन्तु आज कुछ धर्मों के लोगों का यह मन्तव्य है कि एक जन्म लेने के बाद मनुष्य दूसरा जन्म नहीं लेता बल्कि वह 'कब्र दाखिल' ही रहता है। जब क़यामत अथवा महाविनाश का समय आता है तब परमात्मा आकर उसे कब्र से निकालते हैं और उसे कर्मों का फल देकर वापस रूहों की दुनिया में ले जाते हैं।

ब्रह्माकुमारी—जी हाँ, कई लोग ऐसा मानते हैं, परन्तु वास्तव में सत्यता इससे भिन्न है। बात यह है कि एक बार इस मनुष्य-सृष्टि में जन्म लेने के बाद आत्मा कल्प के अन्त तक अर्थात् इस सृष्टि का महाविनाश होने तक पुनर्जन्म लेती रहती है। कल्प के अन्त में वह बिल्कुल अज्ञानता की हालत में होती है। इसे ही मुहावरे में "कब्र दाखिल होना" कहा गया है। तब परमपिता परमात्मा इस सृष्टि में अवतरित होकर सभी को ईश्वरीय ज्ञान देकर 'कब्र से निकालते हैं' अर्थात् अज्ञान-निद्रा से जगाते हैं। परमात्मा उन्हें वापस परमधाम ले जाते हैं और जो पवित्र नहीं बनतीं उनके कर्मों का लेखा चुकाकर अर्थात् उन्हें फल देकर भी वे परमधाम ले जाते हैं, परन्तु आज 'कब्र दाखिल होने' का वास्तविक अर्थ न जानने के कारण ही लोग मानते हैं कि आत्मा एक ही जन्म लेती है।

आप किंचित सोचिए कि यदि मनुष्यात्माएँ पुनर्जन्म न लेतीं तो संसार में जनसंख्या क्यों बढ़ती जाती? जन-संख्या के दिनोंदिन बढ़ने से ही स्पष्ट है कि पहली वाली आत्माएँ पुनर्जन्म लेती आ रही हैं और अन्य आत्माएँ भी परमधाम से उतर रही हैं।



विचार, इच्छा, प्रयत्न अथवा पुरुषार्थ, अनुभव, स्मृति तथा संस्कार—ये आत्मा ही के लक्षण हैं। आत्मा ही [illegible] आनन्द का विचार करती, आनन्द के लिए इच्छा करती, उसके लिए पुरुषार्थ करती, [illegible] आनन्द की प्राप्ति का अनुभव आदि करती है। अतः मन और बुद्धि आत्मा से अलग नहीं [illegible] नहीं हैं बल्कि स्वयं आत्मा ही की योग्यताएँ हैं।



चित्र में अंकित तीन लोक का योग-युक्त अवस्था में दिव्य चक्षु द्वारा साक्षात्कार किया गया।
परमपिता परमात्मा शिव ने ही दिव्य-दृष्टि का वरदान देकर इनका साक्षात्कार कराया।

वास्तव में मानव के चारित्रिक उत्थान के लिए भी पुनर्जन्म का मानना आवश्यक है; क्योंकि अगर मनुष्य यह नहीं मानेगा कि उसे अपने रहे कर्मों का फल, अगले जन्म में भी मिलेगा अवश्य, तब वह तो अपने कर्मों की अच्छाई और बुराई पर ध्यान नहीं देगा बल्कि इसी जन्म में ही दूसरों को हानि देकर भी मज़े उड़ाना चाहेगा। इससे तो संसार में उच्छृङ्खलता बढ़ेगी।

जिज्ञासु—ठीक है बहन जी, पुनर्जन्म तो होता ही है। यह बात स्पष्ट हो गई है।

ब्रह्माकुमारी—पुनर्जन्म को माने बिना तो यह भी आप नहीं जान सकोगे कि आत्मा अपवित्रता, दुःख और अशान्ति की वर्तमान स्थिति को कैसे पहुँची? आत्मा अपने वास्तविक स्वभाव में तो पवित्र और शान्त है, तभी तो उसे पुनः शान्ति की इच्छा रहती है। स्पष्ट है किन्हीं कारणों से वह पूर्व-जन्मों में पवित्रता और शान्ति की स्थिति से गिरकर वर्तमान स्थिति को पहुँची है। उसके पतन का कारण बने है—काम-क्रोधादि पाँच विकार। उन विकारों का भी मूल कारण है—देह-अभिमान। इन विकारों के कारण ही आत्मा दुःखी हुई है। अतः अब आपको चाहिये कि आप अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानकर उस पहले वाली पवित्र और शान्त स्थिति को प्राप्त करने का अभ्यास करो।

अब अपने को 'आत्मा' निश्चय करो और पवित्र बनो!

इस सब-कुछ बताने का हमारा भाव यह है कि अब अपने को आत्मा निश्चय करो और देह का भान छोड़ो। आज इसी देह-अभिमान के कारण ही मनुष्य में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि सभी विकार हैं। मनुष्य कहते हैं कि हम इन विकारों को छोड़ना तो चाहते हैं परन्तु ये विकार छूटते नहीं हैं। भला वे इन विकारों को छोड़ कैसे सकते हैं? इनका जो मूल 'देह-अभिमान' है, इसको जब तक मनुष्य नहीं छोड़ेगा अर्थात् जब तक स्वयं को देह की बजाय 'आत्मा' निश्चय नहीं करेगा तब तक ये विकार छूट ही नहीं सकते। आप देखिये कि जब मनुष्य किसी की देह को देखता है अर्थात् यह देखता है कि यह सुन्दर देह है, स्त्री रूप है आदि-आदि, तभी तो उसमें काम विकार की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार, जब मनुष्य यह देखता है कि मैं देह की आयु के विचार से बड़ा हूँ और दूसरा व्यक्ति मुझसे छोटा है परन्तु फिर भी वह मेरी बात नहीं मानता, तो देह-अभिमान के कारण उसे क्रोध आता है। फिर देह के जो सम्बन्धी बच्चे, स्त्री आदि हैं, उनके दैहिक सम्बन्ध का भान बना रहने से वह मोह करता है और उनके लिए लोभ भी करता है। अतः इन विकारों ने मनुष्य को दुःखी कर रखा है, परन्तु फिर भी मनुष्य इनसे छुटकारा इस कारण नहीं

पा सकता कि वह स्वयं को 'आत्मा' निश्चय नहीं करता।

इसलिए, अव किसी को भी आप देखो तो उनकी भृकुटी की ओर देखो और मन में यह निश्चय करो कि मैं आत्मा अपने मुख से बोल रही हूँ और वह आत्मा अपने कानों द्वारा मेरी वात को सुन रही है। इसी प्रकार कोई भी कर्त्तव्य करो तो यह याद करो कि देह द्वारा मैं आत्मा यह कार्य कर रही हूँ। इस स्मृति से यह लाभ होगा कि जो विकार अथवा वुरे संस्कार आपको तंग किया करते थे, वह अव उठेंगे ही नहीं अथवा बदलते जायेंगे और आत्मा पावन होती जायेगी।

परमात्मा से 'लाईट' और 'माईट' लेने की युक्ति

आज मनुष्य परमात्मा से शान्ति और शक्ति लेने के लिए [illegible] करते हैं परन्तु पहले अपने को तो वे जानते ही नहीं। स्वयं को ही नहीं जानते तो अपने पिता को कैसे जानेंगे और उसके साथ सम्बन्ध, स्नेह और स्मृति कैसे जोड़ेंगे और परमात्मा से शान्ति तथा शक्ति कैसे प्राप्त होगी? स्थूल दृष्टान्त से हम देखते हैं कि पॉवर हाउस (Power house) से जो तार आ रहे हैं, उसे जब हम अपने घर की तार के साथ जोड़ना चाहते हैं तो दोनों तारों के ऊपर से रबड़ हटा कर तब जोड़ते हैं तभी तो पॉवर (Power) आती है। अगर रबड़ चढ़ा रहे तो [illegible] न हों, विजली की करेण्ट नहीं आती और रोशनी या पॉवर भी नहीं आती। ठीक इसी प्रकार, जब तक मनुष्य में देह-अभिमान रूपी रबड़ चढ़ा हुआ है और मनुष्य जब तक परमात्मा को भी कोई देह-धारी देवता ही मानता है, तब तक उसमें [illegible] वह पॉवर आ नहीं सकती। अतः अव देह-अभिमान को छोड़कर स्वयं को ज्योतिस्वरूप 'आत्मा' निश्चय करो और ज्योतिस्वरूप परमात्मा [illegible] की याद में रहो तो फिर देखो कि उस मेन पॉवर हाउस से अथवा शान्ति के सागर, आनन्द के सागर, सर्वशक्तिमान परमपिता परमात्मा से कैसे शान्ति, शक्ति और आनन्द की प्राप्ति होती है। स्वयं को 'आत्मा' निश्चय करने से ही आपकी याद रूपी तार परमात्मा से जुड़ेगी और आप ईश्वरीय स्मृति से आनन्द, शान्ति और शक्ति भी ले सकोगे।

तो अव से लेकर वुद्धि में यह स्मृति धारण करो कि यह देह तो मेरे वस्त्र हैं, मैं तो आत्मा हूँ। अपने देह के सम्वन्धियों को देखते हुए भी उनको आत्मा की दृष्टि से देखो। यह सोचो कि यह भी आत्माएँ हैं। एक देह का दूसरी देह के साथ सम्वन्ध तो विनाशी है। उसे देखना तो गोया वस्त्रों को देखना है और गोया असली वस्तु को न देखना है। तो उन वस्त्रों में छिपी हुई असली वस्तु 'आत्मा' है, हम आत्माओं का

सम्बन्ध इसी से है। अतः ज्ञान के चक्षु से उस आत्मा ही को देखने से मोह-ममता, आसक्ति आदि उत्पन्न नहीं होगी, न ही दृष्टि और वृत्ति में 'काम' आदि विकार आयेंगे। इसलिये, यह पहला सबक पक्का करो। कल हमें बताना कि कितना समय आत्मिक दृष्टि रही और सारे दिन में आप कितना समय 'आत्मा-निश्चय' (Soul-Consciousness) की अवस्था में रहे।

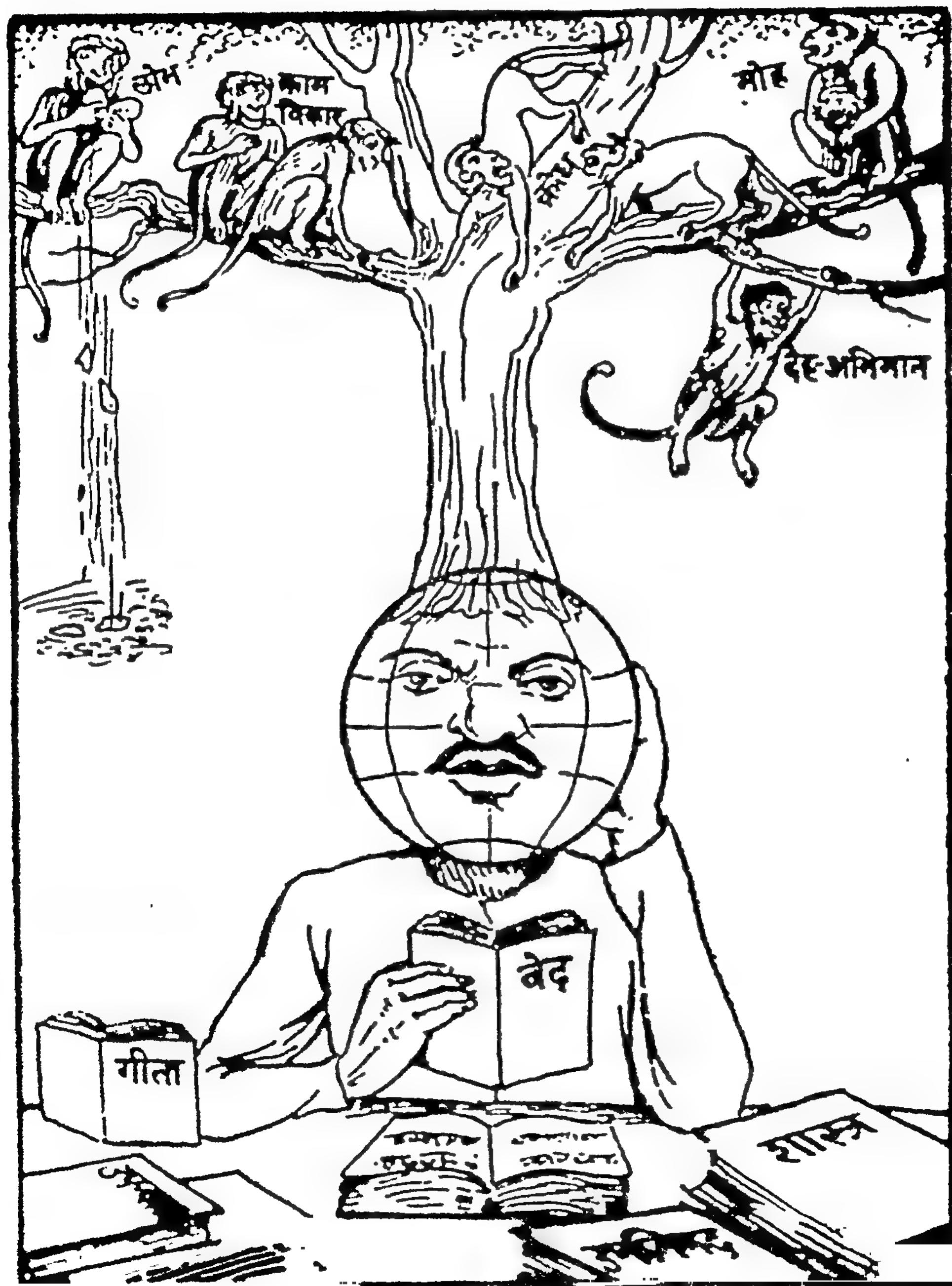
कल हम आपको परमपिता परमात्मा का परिचय देंगे। अपने परमपिता को तो पहचानना चाहिए ना? उनको न पहचानने के कारण ही तो सभी अनाथ हो गये हैं।

अच्छा, कल, आप यही बताना कि कितना समय आत्मा-निश्चय में रहे और मन को विकारों से हटाकर दिव्यगुणों की धारणा में लगाने का पुरुषार्थ चलता रहा या नहीं। इसके अतिरिक्त, संक्षेप में इन प्रश्नों के उत्तर भी लिख लाना ताकि हमें मालूम हो सके कि आपने सभी बातें स्पष्ट या ठीक तौर पर समझी हैं वर्ना हम उसे अधिक स्पष्ट करेंगे —

प्रश्न

१. आत्मा क्या वस्तु है?
२. आत्मा को 'चेतन' क्यों कहा गया है?
३. मन, बुद्धि और संस्कार क्या हैं?
४. आत्मा का आदि-धाम कौनसा है?
५. पुनर्जन्म के मुख्य प्रमाण क्या हैं?
६. देह-अभिमानी बनने से विकारों की उत्पत्ति कैसे होती है?
७. देह में मनुष्यात्मा कहाँ निवास करती है?
८. मन और मस्तिष्क में क्या अन्तर है?

देह-अभिमानी मनुष्य



(सब-कुछ पढ़ डाला परन्तु यदि आत्मा-निश्चय न करें और विकारी ही बने रहें तो क्या लाभ?)

परमात्मा कौन है?

क्या परमात्मा का कोई रूप है और उसे देखा जा सकता है?

ब्रह्माकुमारी—आपने अपने परिचय-पत्र में पिताजी का नाम, निवास-स्थान और व्यवसाय लिखा है?

जिज्ञासु—जी हाँ!

ब्रह्माकुमारी—यदि आपके किसी भाई या बहन से भी आपके पिताजी का नाम आदि पूछा जाये तो वह भी यही बतायेंगे या इससे कोई भिन्न?

जिज्ञासु—बहन जी, वह भी यही बतायेंगे। जब उनका परिचय है ही यह तो फिर उनके और मेरे बताने में अन्तर क्यों होगा?

ब्रह्माकुमारी—आप ठीक कहते हैं। परन्तु कल मैंने आपको बताया था कि आप शरीर नहीं हैं बल्कि शरीर रूपी वस्त्र को धारण करने वाली एक 'आत्मा' हैं। इसी प्रकार अन्य सभी देहधारी भी वास्तव में आत्माएँ हैं। अब आत्माएँ कहती भी हैं कि परमात्मा एक है, गॉड इज वन (God is one)। परन्तु आज एक मनुष्य परमपिता परमात्मा के नाम, धाम आदि के बारे में जो कुछ बताता है, दूसरा उससे भिन्न ही कुछ बताता है। इससे सिद्ध है कि ये परमपिता परमात्मा के बारे में ठीक रीति से नहीं जानते तभी तो अनेक मत हैं और तभी लोगों के मन में संशय उठता है।

जिज्ञासु—हाँ, यह तो ठीक बात है। परमपिता परमात्मा का सत्य परिचय तो एक ही होना चाहिए।

परमात्मा के बारे में अनेक मत क्यों हैं?

ब्रह्माकुमारी—तो आज परमात्मा के बारे में अनेक मतों का होना ही सिद्ध करता है कि लोग अपने आत्मा के पिता को नहीं जानते। तभी तो आज बहुत से लोग कहते हैं कि—"परमात्मा का तो कोई रूप ही नहीं है।" आप किञ्चित विचार कीजिए कि रूप के बिना भला कोई चीज़ हो कैसे सकती है? परमात्मा के लिए तो लोग कहते हैं—"अँखियाँ प्रभु-दर्शन की प्यासी" अथवा "हे प्रभो, अपने दर्शन दे दो।" अतः यदि परमात्मा का कोई रूप ही नहीं है तब तो परमात्मा से मिलन भी

नहीं कि यह रस्म हमारे यहाँ क्यों चली आ रही है, यह किसकी यादगार है और, जबकि हम मूर्त्तिपूजक अथवा बुत परस्त भी नहीं है तो इस प्रतिमा का हमारे यहाँ प्रतिमा-जैसा स्थान क्यों है?

ईसाइयों के मत-स्थापक ईसा तो कहते थे 'गॉड इज़ लाईट' (God is Light) अर्थात् परमात्मा एक ज्योति है। यहूदियों के मत-स्थापक हजरत मूसा ने भी पर्वत पर झाड़ी के निकट परमेश्वर (जेहोवा) को एक लौ ही के रूप में देखा था। सिक्खों के मत-स्थापक नानक भी एक निराकार ज्योतिस्वरूप ही की महिमा किया करते थे। उनके गुरु गोविन्द सिंह जी ने तो अकाल स्मृति नामक ग्रन्थ में "दे शिवा वरदान मोहे" इस प्रकार परमात्मा को 'शिव' नाम से पुकारा है। भारत में शाक्त लोग भी शिव ही को शक्तियों का सृजनकर्त्ता मानते हैं। अतः हमें उस ज्योतिस्वरूप परमपिता परमात्मा ही की स्मृति में स्थित होना चाहिए।

जिज्ञासु—परन्तु ज्योतिस्वरूप परमात्मा अगर 'निराकार' है तो फिर उसका रूप कैसे माना जाए? 'निराकार' उसे कहा जाता है जिसका कोई आकार न हो।

यदि परमात्मा का कोई रूप है तो उसे निराकार कैसे कहा जा सकता है?

ब्रह्माकुमारी—देखिए, जैसे हम किसी कमरे के बारे में कहते हैं कि—"यह कमरा बड़ा है", तो अवश्य ही हम किसी विशेष छोटे कमरे की तुलना में ऐसा कहते हैं। वर्ना यदि किसी बहुत बड़े कमरे से हम उसकी तुलना करें तो जिसे अभी हम बड़ा कह रहे हैं तब उसे भी 'छोटा' मानना पड़ेगा। स्पष्ट है कि 'बड़ा', 'छोटा', 'पतला', 'मोटा' आदि सभी विशेषण एक-दूसरे की तुलना में प्रयोग किये जाते हैं। इसी प्रकार 'निराकार' शब्द भी 'साकार' और 'सूक्ष्माकार' की तुलना में [illegible] मैंने कल आपको बताया था कि जिन आत्माओं ने स्थूल शरीर धारण किए [illegible] है, जैसे कि मनुष्य रूप अथवा स्त्री [illegible] उन्हें हम 'साकार' कहते हैं [illegible] अर्थात् दिव्य, प्रकाशमय काया वाले देवता हैं जैसे कि ब्रह्मा, [illegible] उन्हें 'सूक्ष्माकार' कहा जाता है परन्तु परमात्मा तो एक ऐसी [illegible] स्थूल देह है, न सूक्ष्म काया है इसलिए उसे 'निराकार' [illegible] 'निराकार' का अर्थ है—शारीरिक आकार से रहित। अंग्रेजी [illegible] जाता है—इन्कॉर्पोरियल (Incorporeal) अर्थात् जिसकी [illegible] हो, जिसके कोई अंग-प्रत्यंग न हो और न काया हो। [illegible] तो अविनाशी [illegible] है, वह है—ज्योति-बिन्दु [illegible]

परमात्मा का गुणवाचक नाम

देखिए, जैसे परमात्मा का रूप हम देहधारियों से न्यारा है, वैसे ही उनका नाम भी हमारे नामों से न्यारा है। मनुष्य का नाम तो देह पर आधारित होता है, वह कोई उनके गुणों और कर्त्तव्यों पर आधारित नहीं होता, बल्कि बहुत बार तो उनके गुण उनके नाम से विपरीत होते हैं। उदाहरण के तौर पर किसी का नाम होता है 'अमीर चन्द' और वह होता है गरीब। नाम होता है 'शान्तिस्वरूप' और होता है वह बहुत क्रोधी।

अब आपको मालूम रहे कि परमात्मा का नाम उनके गुणों और कर्त्तव्यों पर आधारित है। उनका मुख्य और स्व-कथित नाम तो **'शिव'** है और 'शिव' का अर्थ है—'कल्याणकारी'। परमात्मा सभी का कल्याण करता है, इसलिए उनका नाम 'शिव' है। सभी आत्माएँ उसी ही से मुक्ति-जीवनमुक्ति, गति-सद्‌गति या सुख और शान्ति माँगती हैं। मनुष्य परमात्मा शिव को अन्य गुणवाचक नामों से भी याद करते हैं। उन्हीं नामों में ओमकारेश्वर, पापकटेश्वर, मुक्तेश्वर, अमरनाथ, सोमनाथ, महाकालेश्वर आदि नाम विशेष हैं। परमात्मा के **'शिव'** तथा अन्य नामों से परमात्मा के गुणों और आत्माओं के साथ उनके सम्बन्ध का भी परिचय मिलता है।

आत्माओं के साथ परमात्मा का सम्बन्ध

जिज्ञासु—परमात्मा के नाम से परमात्मा के गुणों का तथा उनके साथ हमारे सम्बन्ध का परिचय मिलता है?

ब्रह्माकुमारी—देखिए, लौकिक दृष्टि से भी पिता, शिक्षक और गुरु ही मनुष्य के थोड़े-बहुत शुभचिन्तक और कल्याण करने वाले माने गए हैं। तो परमात्मा जिसका नाम **'शिव'** अर्थात् कल्याणकारी है, उनके इस नाम से सिद्ध होता है कि वह सभी मनुष्यात्माओं के **परमपिता, परमशिक्षक** और **परमसद्‌गुरु** है। आज बहुत से लोग परमात्मा को 'परमपिता' के सम्बन्ध से तो पुकारते हैं, परन्तु वे यह नहीं जानते कि वह ज्ञान का सागर परमात्मा वास्तव में किसी समय अवतरित होकर मनुष्य-मात्र को ज्ञान देकर उनकी सद्‌गति भी करता है, अर्थात् उनका शिक्षक और सद्‌गुरु भी बनता है क्योंकि जब तक वह इस सम्बन्ध में न आये, तब तक मनुष्यात्माओं का स्थायी कल्याण कदापि नहीं हो सकता।

परमात्मा के निराले गुण

अब आप सोचते होंगे कि परमात्मा के नाम से परमात्मा के गुण और कर्तव्य कैसे सिद्ध हो सकते हैं?

किंचित विचार कीजिए कि अन्य किसी का कल्याण तो वही कर सकता है कि जिसका अपना कल्याण हुआ हुआ हो। फिर, दूसरो का कल्याण करने के लिए ज्ञान भी तो आवश्यंक है क्योकि अज्ञानता के वश ही तो मनुष्य विकर्म करता है और उससे ही तो मनुष्य का अकल्याण होता है अत परमात्मा का जो नाम 'शिव' (कल्याणकारी) है, उससे सिद्ध होता है कि परमात्मा स्वय सदा कल्याण-स्वरूप **अथवा सदामुक्त है, सदा पावन है, ज्ञान का सागर है और सर्वशक्तिमान् है।** तभी तो वह मनुष्यात्माओ को ज्ञान देकर, उन्हे पतित से पावन बनाता है और उनका कल्याण करता है। वह सुख का दाता, शान्ति का सागर और आनन्द का सागर है, तभी तो दूसरे उससे सुख और शान्ति रूप कल्याण माँगते हैं।

तो आप देखिये, परमात्मा का कितना उच्च नाम है! परन्त आज लोग कहते हैं कि 'वह नाम से न्यारा है'। वास्तव में परमात्मा नाम से न्यारा नही है, बल्कि उसका नाम हम सभी के नामो से न्यारा है।

परमात्मा के साथ सम्बन्ध याद रखने से अपार खुशी

फिर इस बात की ओर भी विशेष ध्यान दीजिए कि परमात्मा के साथ तो हमारा बहुत निकट का सम्बन्ध है क्योंकि वही हमारा परमपिता, परमशिक्षक और परमसद्गुरु है। परन्तु आज लोगो को इस सम्बन्ध की कोई खुशी नहीं है। संसार मे हम देखते हैं कि करोड़पति का जो पुत्र होता है, उसे बहुत नशा रहता है कि मैं एक बहुत धनी आदमी का पुत्र हूँ। यदि उसे नशा नही रहता या अगर उसके तन पर साफ-सुथरे कपडे नही होते बल्कि वह फटे-पुराने कपडे और जूता पहने रहता है तो हम यही समझते हैं कि भले ही इसका पिता करोड़पति है परन्तु इसका सम्बन्ध पिता से नही है। इसने उसे छोड दिया है, वा तो यह उसकी आज्ञानुसार नहीं 'चलता'। ठीक इसी प्रकार आप भी उस त्रिलोकीनाथ, शान्ति के सागर, आनन्द के सागर, प्रेम के सागर परमपिता परमात्मा की सन्तान हैं, परमात्मा को आप 'पिता' कहते हैं, परन्तु जीवन मे वह नशा कहाँ है कि मैं इतने महान् पिता का पुत्र हूँ? आज मनुष्य के जीवन में दुःख, अशान्ति और अपवित्रता देखकर क्या यह

निष्कर्ष निकालना ठीक है कि आज मनुष्यात्मा का सम्बन्ध उस सुख-शान्ति के दाता परमपिता परमात्मा से टूटा हुआ है, वर्ना पिता शान्ति का सागर हो और पुत्र अशान्त, पिता सुख का दाता हो, पुत्र दुःखी इसका और क्या कारण हो सकता है? मनुष्य भले ही नित्यप्रति उसे 'परमपिता' कहकर पुकारता है तथापि आज उस परमपिता के साथ उसका कोई सजीव या आचारणात्मक सम्बन्ध नहीं है। तो कैसी अजीब बात है कि आज मनुष्य अपनी विनाशी देह के सम्बन्धियों को जानता, पहचानता और उनकी याद में रहता है और उनके सम्बन्ध के नशे में ही रहता है परन्तु, परमपिता परमात्मा, जिससे ही उसे स्थायी, सम्पूर्ण और सब प्रकार की प्राप्ति हो सकती है, उसे वह भूल हुआ है! आज उसे यह भी मालूम नहीं है कि मेरा पिता किस धाम का वासी है, वह कहता है कि परमात्मा सर्वव्यापी है।

परमात्मा का धाम ब्रह्मलोक अथवा परलोक

आज मनुष्यात्माएँ स्वयं ही कहती हैं कि यह संसार एक मुसाफ़िरखाना है। तो स्पष्ट है कि आत्माएँ किसी और धाम से यहाँ आई हैं, जिसे परमधाम 'ब्रह्मलोक' कहा जाता है। तो जो आत्माओं का धाम होगा वही तो उनके परमपिता (परम-आत्मा) का भी धाम होगा? संसार में जब कोई कहता है कि—"हम इस गाँव के रहने वाले नहीं हैं, हमारा वास्तविक घर दूसरे गांव में है" तो उसका यह भी अर्थ होता है कि उनके पिता भी उसी गाँव के हैं। जो बाप का गाँव होता है, वही तो प्रायः बच्चे का गाँव होता है। इसीलिए, परमपिता परमात्मा शिव भी ब्रह्मलोक के वासी हैं, वहाँ से ही वह धर्म-ग्लानि के समय इस मनुष्य-सृष्टि में आते हैं और मनुष्यात्माओं को ईश्वरीय-ज्ञान और राजयोग की शिक्षा देते हैं। पिता और शिक्षक कभी सर्वव्यापी तो नहीं होते। जबकि मनुष्य भी कहते हैं कि यह संसार तो "चिड़िया रैन बसेरा है, न घर तेरा है,न मेरा है", तब भला यह संसार परमात्मा का घर कैसे हो सकता है?

जिज्ञासु—आपने यह स्पष्टीकरण सुनकर तो मन को ऐसा लगता है कि परमात्मा हमारा परमपिता है और उनका अपना धाम भी है। परन्तु, यह समझ में नहीं आता कि लोग परमात्मा को अब तक जिस आधार पर सर्वव्यापक मानते आये हैं, वह गलत कैसे है? लोग कहते हैं कि परमात्मा एक अनुभव की चीज है, उसका कोई रूप नहीं है। जैसे सुख-दुःख या सर्दी-गर्मी का अनुभव होता है, परन्तु उसका कोई रूप नहीं है।जैसे वायु चलती है अर्थात् उसका अनुभव होता है परन्तु उसका

जिज्ञासु—बहन जी, यह बात तो स्पष्ट हो गई है, परन्तु मेरे मन में यह प्रश्न उठता है कि रूप वाली वस्तु तो सीमा (हद) वाली होती है और अगर परमात्मा सीमा वाला हो तो उसमें अनन्त (बेहद) का ज्ञान अथवा पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता। जो पूर्ण अथवा अनन्त ज्ञान वाला न हो वह तो 'परमात्मा' भी नहीं हो सकता। इसलिए बहन जी, क्या परमात्मा को रूप वाला मानना गलत नहीं है?

यदि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है तो वह सर्वज्ञ कैसे है?

ब्रह्माकुमारी—यह कोई आवश्यक नहीं है कि जिसमें जितना अधिक ज्ञान हो वह उतना ही अधिक लम्बा-चौड़ा हो। हम देखते हैं कि दो मनुष्यात्माओं में से एक मनुष्यात्मा को अधिक ज्ञान है और दूसरे को कम, परन्तु हम जानते हैं कि यद्यपि दोनों के 'ज्ञान में अन्तर' है तथापि आत्माओं के माप (Size) में तो कोई अन्तर नहीं अर्थात् दोनों आत्माएँ हैं तो बिन्दु रूप ही। इसी प्रकार, परमात्मा ज्ञान के विचार से सर्व-महान् अर्थात् '**परम**' है परन्तु है वह भी तो बिन्दु-रूप ही।

दूसरी बात यह है कि ज्ञानवान और ज्ञेय (अर्थात् जिसे जाना जाय) दोनों के माप का एक-जितना होना ज़रूरी नहीं है। उदाहरण के तौर पर किसी कमरे में क्या-क्या पड़ा है और कौन-कौन बैठा है, इस बात को जानने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि जानने वाला मनुष्य भी कमरे-जितना बड़ा हो अथवा वह कमरे में या उसमें रखी हुई वस्तुओं में या उनमें बैठे हुए मनुष्यों में व्यापक हो। बल्कि हम देखते हैं कि कमरे के एक कोने में बैठा हुआ एक व्यक्ति उस सारे कमरे को अपनी आँखों की छोटी-सी पुतलियों (आँखों) के द्वारा देख सकता है। अन्तरिक्ष-यान में बैठा हुआ यात्री वैज्ञानिक-प्रसाधनों द्वारा सारी पृथ्वी को देख सकता है तथा 'रिमोट कन्ट्रोल' (Remote Control) करने वाला वैज्ञानिक नियन्त्रणालय में बैठा अन्तरिक्ष-यान को देख सकता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि देखने वाले की दृष्टि ठीक हो, उसके नेत्रों में कोई विकार या रोग न हो और उसकी बुद्धि ठीक समझ सकती हो और उसके नेत्रों तथा वस्तुओं के बीच में कोई बाधा, रुकावट अथवा आवरणादि न हो। इससे स्पष्ट है कि परमात्मा जो कि योगेश्वर है, दिव्य-दृष्टि सम्पन्न है, परम बुद्धिमान है, सम्पूर्ण निर्विकार है और [illegible] दृष्टि में प्रकृति, काल, अज्ञान या कर्मादि बाधा नहीं डाल [illegible] परमधाम-वासी होते हुए भी ज्ञान-दृष्टि अथवा दिव्य-दृष्टि द्वारा [illegible] ही है। देखने या जानने के लिए 'ज्ञेय' में (अर्थात् जिसे जान[illegible] व्यापक होने की आवश्यकता नहीं है बल्कि ज्ञान और [illegible]

जानते हैं कि आकाश में मीलों ऊँचे जाकर एक अन्तरिक्ष-यान (Space-Ship) भी वैज्ञानिक यन्त्रों द्वारा इस पृथ्वी पर की वस्तुओं के चित्र ले सकता है और यहाँ एक वैज्ञानिक अपने कन्ट्रोल रूम के एक कोने में बैठा हुआ भी अन्तरिक्ष-यान को कन्ट्रोल कर सकता है, उसमें बैठे व्यक्ति से बातचीत कर सकता है और उसकी फोटो भी ले सकता है। तो जबकि वैज्ञानिक यन्त्रों रूपी साधन द्वारा, दूर की चीज़ों को देख सकते, दूसरे देशों में बैठे व्यक्तियों से बात कर सकते और दूसरों के चित्र आदि भी ले सकते हैं तो परमपिता परमात्मा जो कि सर्वोत्तम शक्ति से सम्पन्न हैं, उन्हें वस्तुओं को देखने या व्यक्तियों को जानने के लिए उनमें व्यापक होने की भला क्या आवश्यकता है?

इसी प्रकार, इस संसार के पुनरावृत्त (Repeat) होने वाले इतिहास को भी परमपिता परमात्मा इतिहास की नियति (Pre-ordination or Pre-determination) के कारण अर्थात् इसके अनादि-निश्चित होने के कारण सदा जानते ही हैं। इस संसार की **बनी-बनाई भावी** को परमात्मा **पूर्व-दर्शी** अथवा **त्रिकालदर्शी** होने के कारण सदा जानते ही हैं। किसी स्थान या किसी मनुष्यात्मा में व्यापक होने से तो केवल **वर्तमान्** ही को जाना जा सकता है, भविष्य को पहले से तभी जाना जा सकता है जबकि भविष्य में होने वाली वार्त्ताएँ अथवा घटनाएँ पूर्व-निश्चित हों। अतः परमात्मा के त्रिकालदर्शी और **विश्व-नाटक** के अनादि-निश्चित एवं पुनरावृत्ति वाला होने के कारण ही परमात्मा सर्व घटनाओं और सर्व-धर्मवंशों की आत्माओं के ज्ञाता अर्थात् सर्वज्ञाता हैं, न कि सर्वव्यापी होने के कारण।

यदि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं हैं तो सर्वशक्तिमान कैसे हैं?

जिज्ञासु—परन्तु यदि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं हैं तो वह सर्वशक्तिमान् कैसे हैं और वह सृष्टि की रचना, पालना तथा विनाश कैसे करते हैं?

ब्रह्माकुमारी—मैं इस बात को पहले ही स्पष्ट कर चुकी हूँ कि यद्यपि परमात्मा सर्वशक्तिमान् हैं तथापि वह सर्वव्यापक नहीं हैं। आज सभी जानते हैं कि थोड़े-से वैज्ञानिकों ने ऐसे-ऐसे बम, अथवा अस्त्र-शस्त्र बना लिये हैं कि थोड़े ही समय में उन द्वारा महाविनाश हो सकता है, परन्तु थोड़े-से वैज्ञानिक सारे संसार में व्यापक तो नहीं हैं? अतः मालूम रहे कि अपने संस्कारों और भावी के वश में हुए देह-अभिमानी और विज्ञान-अभिमानी लोग ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र, मूसल, एटम-बम आदि-आदि बनाते हैं जिनके प्रयोग से संसार का महाविनाश होना है। इसके

यह अर्थ होगा कि आत्मा अपने स्वभाव से सदा ही [illegible] है। यह तो [illegible] है। वास्तविकता तो यह है कि आत्मा में ही अपने पहले के शुद्ध संस्कार [illegible] अशुद्ध भी हैं। इन दोनों में ही यह द्वन्द्व होता है। अतः [illegible] भी [illegible] है [illegible] तो पुरुषार्थ से आत्मा अच्छी और महान बन सकती है [illegible] आत्मा में [illegible] अच्छे संस्कार न होते तब तो पुरुषार्थ [illegible] है [illegible] बताइये कि [illegible] सर्वव्यापक है तो [illegible] परमात्मा तो [illegible] है [illegible] परमात्मा की [illegible] है कि [illegible] नहीं मानते?

क्या परमात्मा का कोई रूप [illegible] है?

जिज्ञासु—[illegible] परमात्मा का [illegible] महिमा कम [illegible] है।

ब्रह्माकुमारी—[illegible] परमात्मा की महिमा कम हो जाती है [illegible] लम्बे-चौड़े-घने परिमाण वाला [illegible] बड़ाई ही क्या है? बड़ाई अथवा महिमा तो तभी होती है कि [illegible] तो छोटा हो परन्तु कर्म अति महान हो।

जिज्ञासु—परन्तु सभी शास्त्र तो यही कहते हैं कि परमात्मा सर्वव्यापक है?

ब्रह्माकुमारी—मनुष्यों के मन [illegible] गया है कि परमात्मा सर्वव्यापक है [illegible] तो स्पष्ट है कि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है [illegible] महावाक्यों का संग्रह है। अतः भगवान [illegible] कहते हैं वही मानना चाहिए। भगवान कहते हैं कि—[illegible] तुम मेरे [illegible] वेदों-शास्त्रों के [illegible] भगवान के [illegible] क्यों कहते कि—[illegible] मनाने आया हूँ।' इससे स्पष्ट है कि [illegible] वास्तविक ज्ञान [illegible]

जिज्ञासु—गीता में [illegible]

गीता माता की साक्षी

ब्रह्माकुमारी—गीता शास्त्र इसी सिद्धान्त पर आधारित है कि परमपिता परमात्मा अवतरित होते हैं। यदि परमात्मा सर्वव्यापी हों तब तो उनके अवतरित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः गीता के अवतारवाद के सिद्धान्त से स्पष्ट है कि परमात्मा सर्वव्यापी नहीं है। वास्तव में गीता में यह भी महावाक्य हैं कि—"इस सृष्टि के आकाश-तत्व के पार जो अव्यक्त धाम है, जहाँ सूर्य और तारागण का प्रकाश नहीं पहुँचता, वही मेरा परमधाम है।" भगवान् ने यह भी कहा है कि—"मैं प्रवेश होने के योग्य हूँ, मैं दिव्य जन्म लेता हूँ। मैं इस तन में अवतरित हुआ-हुआ परमात्मा हूँ परन्तु मूढ़मति लोग इस साधारण तन में आये हुए मुझ परमात्मा को नहीं पहचानते।" यह सृष्टि एक उल्टा वृक्ष है, मैं इसका अविनाशी बीज हूँ, जो कि सूर्य और तारागण के प्रकाश से भी परे 'ब्रह्मयोनि' में रहता हूँ।

जिज्ञासु—परन्तु गीता में कुछ ऐसे भी वाक्य हैं जिनसे कि यह संकेत मिलता है कि परमात्मा सर्वव्यापक है।

ब्रह्माकुमारी—यह गीता शास्त्र भगवान् के ज्ञान देने के समय के बहुत बाद में । हुआ है। फिर उसमें भी कोई वाक्य बाद में मनुष्यों ने मिलाये हैं।

जिज्ञासु—हम यह कैसे मानें कि सर्वव्यापकता-सम्बन्धी वाक्य इस ग्रन्थ में बाद में मिलाये गये हैं?

ब्रह्माकुमारी—क्योंकि यह वाक्य गीता शास्त्र के महावाक्यों के अथवा मुख्य अभिप्राय के विरुद्ध जाते हैं। **'भगवानुवाच'** शब्द से तथा **'श्रीमद् भगवद्गीता'** नाम से तथा सूर्य, तारागण आदि के प्रकाश से भी परे मेरा धाम है, 'मैं धर्म-ग्लानि के समय साकार रूप लेता हूँ, **मेरा जन्म दिव्य है**' आदि-आदि जो महावाक्य हैं उन सभी के भाव के विरुद्ध जो वाक्य जाते हैं, उन्हें बाद में मिलाये गए वाक्य अथवा मनुष्य-मत पर आधारित वाक्य ही मानना होगा।

जिज्ञासु—हाँ, यह तो मनुस्मृति में भी कहा गया है कि जब किसी विषय पर दो शास्त्रों के भिन्न विचार हों अथवा दो विद्वानों का मत-भेद हो तो मनुष्य को अपने विवेक से उसकी सत्यता-असत्यता को परखना चाहिए! इसके अतिरिक्त, मैंने देखा है कि आर्यसमाजी भाई भी गीता में कई वाक्यों को बार-बार आया देखकर तथा अन्य कई कारणों से गीता को प्रक्षिप्त मानते हैं। गीता को जिस महाभारत ग्रन्थ का एक भाग माना जाता है, उसको तो प्रायः सभी लोग प्रक्षिप्त मानते हैं ही। परन्तु, बहुत लोग यह भी कहते हैं कि मूल गीता में श्लोक कम थे। कुछ भी हो

मनुष्य को अपने विवेक से तो काम लेना ही चाहिए। अतः सोचने पर मुझे आप द्वारा बताया गया मन्तव्य बहुत ठीक तो लगता है।

दिव्य प्रत्यक्ष अनुभव प्रमाण

ब्रह्माकुमारी—वास्तव में यह अनुभव की बातें हैं। यह केवल तर्क-वितर्क की नहीं हैं। हममें से बहुत-से ब्रह्मा-वत्सों को परमपिता परमात्मा के ज्योति-बिन्दु रूप का प्रायः साक्षात्कार होता ही रहता है! हमने ब्रह्मलोक का भी कई बार दिव्य साक्षात्कार किया है। परमात्मा हम सभी का परमपिता, परमशिक्षक और सद्गुरु है। क्या पिता अपने बच्चों में या शिक्षक अपने शिष्यों में कभी व्यापक होता है? अपने परमप्रिय परमपिता परमात्मा को सर्वव्यापक मानना तो विपरीत बुद्धि का परिचय देना है। परन्तु आश्चर्य है कि आज लोग इसे बड़ी फ़िलॉसोफ़ी मानते हैं! जबकि मनुष्यात्मा भी मुक्ति प्राप्त करके ब्रह्मलोक को जाना चाहती है तो सदा मुक्त परमात्मा भला इस जीवन-बद्ध संसार में क्यों व्यापक होंगे? जबकि ब्रह्मा, विष्णु और शंकर भी इस संसार से ऊपर अपनी-अपनी देव-पुरियों में वास करते हैं तो परमपिता परमात्मा शिव जो कि इन तीनों के भी रचयिता हैं और जिन्हें याद करते समय सभी मनुष्य ऊपर की ओर देखते हैं, इस मनुष्य-लोक में व्यापक क्यों होंगे? 'परमात्मा तो परे से भी परे हैं'। हाँ, जैसे किसी प्रेमिका को अपना प्रेमी हर जगह दिखाई देता है, जैसे मीरा को 'गिरिधर गोपाल' सब जगह दिखाई देते थे, वैसे ही भक्त लोग भी प्रेम-विभोर होकर कहते हैं—"हमें तो सभी जगह परमात्मा दिखाई देता है" परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि परमात्मा सचमुच सर्वव्यापक है। नहीं, वह है तो परमप्रिय परमपिता अथवा परमपवित्र परमधाम का वासी ही, परन्तु तन्मयता से याद किये जाने पर भक्तों की इच्छा पूरी करने के लिए वह कहीं भी उन्हें अपना साक्षात्कार करा सकता है! अतः एक प्रेमिका की तरह आप अपने प्रियतम का अनुभव तो कहीं भी कर सकते हैं परन्त वह स्वयं सब जगह व्यापक नहीं है। परमात्मा स्वयं घट-घट में नहीं है: हाँ, उसकी याद, उसकी तस्वीर घट-घट में हो सकती है।

जिज्ञासु—आपकी बात तो ठीक मालूम होती है परन्तु लोग तो कहते हैं कि कण-कण में भगवान् है।

ईश्वर का अपमान

ब्रह्माकुमारी—आप सोचेंगे तो मानेंगे कि परमात्मा को सर्वव्यापक मानना तो गोया परमपिता परमात्मा का अपमान करना है। परमात्मा को सर्वव्यापक मानने

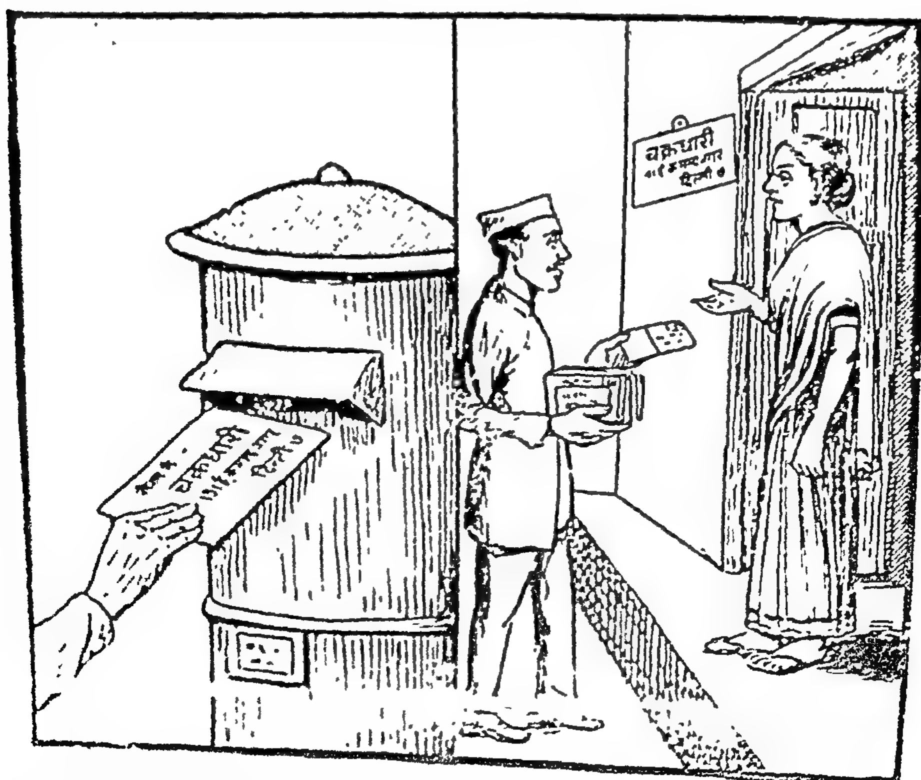
का अर्थ तो उसे सर्प, बिच्छू, मगरमच्छ, कुत्ते, सूअर, उल्लू आदि सभी निकृष्ट योनियों में भी मानना है। अपने ऊँचे-से-ऊँचे पिता के बारे में ऐसा कहना तो गोया मूर्खता है। जिन पत्थरों को मनुष्य पाँव के नीचे रौंदकर चलता है, जिन धूलि-कणों को मनुष्य झाड़कर या झाड़ू से इकट्ठा करके बाहर निकाल फेंकता है, जिस विष्ठा से मनुष्य घृणा करता है, जिस बावले कुत्ते से मनुष्य जान बचाकर निकल जाता है और जिस विषैले सर्प को मनुष्य स्वप्न में भी देखना नहीं चाहता उसमें भी अपने परमपिता को व्यापक मानना तो गोया बुद्धि के दिवालियेपन की निशानी है। जो तीनों लोकों की आत्माओं से सर्वमहान् है, मुक्ति और जीवनमुक्ति का दाता है, पतित-पावन है, दुःख-हर्त्ता और सुख-कर्त्ता है,इस परमपिता को कच्छ (कछुए) में, मच्छ में, गधे में और कुत्ते में व्यापक मानना तो गोया उसकी ग्लानि और निन्दा करके पाप का भागी बनना है और उसे ८४ लाख योनियों में मानकर उसके वास्तविक स्वरूप से विमुख होना है। कल्याण करने वाले और सद्गुरु परमात्मा को ऐसी योनियों में और पत्थर-पत्थर में बताते हुए तो उन मनुष्यों को लज्जा आनी चाहिए कि जो परमात्मा को सर्वव्यापक मानते हैं अर्थात् साँप और उल्लू इत्यादि में भी मानते हैं। क्या वे साँप को कभी याद करते हैं, उससे योग लगाते हैं, मन में उल्लू का कभी ध्यान करते हैं? उफ़, मनुष्य विमुख हो गया है परमात्मा से! उस पिता को जानता तो है नहीं, परन्तु मानता उसे सब जगह है! वह है तो अज्ञानान्ध परन्तु कहता है कि 'जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है, स्वयं है तो कामी, क्रोधी, विकारी और बताता है स्वयं को बड़ा ज्ञानी और कहता है कि आत्मा ही परमात्मा है!

जिज्ञासु—बहन जी, अब मैं समझ गया। मैं मानता हूँ कि परमात्मा को गंदी चीज़ों में भी व्यापक मानना गोया उस प्यारे पिता की ग्लानि करना और उससे विमुख होना है।

परमात्मा शिव को जानने से भारत हीरे-तुल्य

ब्रह्माकुमारी—पिता परमात्मा को जानना ही मुख्य बात को जानना है। देखो, अगर संसार के लोगों को यह मालूम होता कि शिव ही सब आत्माओं के परमपिता हैं, तब तो विश्व का इतिहास ही बदल जाता। तब मुसलमान लोग जिन्होंने कि भारत पर हमला किया और सोमनाथ के मन्दिर को लूटा, वे भारत पर आक्रमण न करते, बल्कि भारत को परमपिता परम-आत्मा के दिव्य जन्म का स्थान मानकर इसे यात्रा-स्थल मानते। परन्तु उन्हें भी यह मालूम नहीं है कि मक्का में जो 'संगे

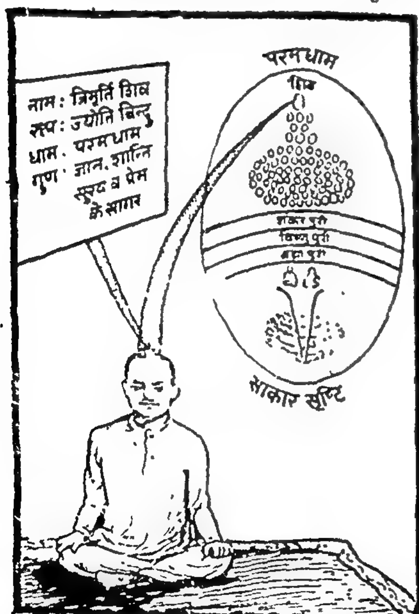
अमवद' है, वह वास्तव में परमपिता परमात्मा शिव ही का स्मृति-चिहन है। जब स्वयं भारतवासी ही परमात्मा को नहीं जानते बल्कि उसे सर्वव्यापी मानते हैं तो दूसरे कैसे मानेंगे? भारतवासी एक ओर तो शिव का दिव्य जन्मोत्सव 'शिवरात्रि' मनाते हैं और दूसरी ओर कहते हैं कि परमात्मा सर्वव्यापक है! देखिये, भारत को जिस परमात्मा ने स्वर्ग बनाया, उसका उन्हें परिचय भी नहीं है! यदि पता होता तो जब किसी दूसरे देश का प्रधानमंत्री आदि भारत में आता है तो भारत सरकार के प्रतिनिधि उसे बापू गाँधी की समाधि पर ले जाने से पहले तो शिव की समाधि पर अर्थात् शिव के मन्दिर में ले जाते क्योंकि सभी को मुक्ति-जीवनमुक्ति देने वाला और पतित से पावन बनाने वाला तो शिव है। शिव से हमारा अभिप्राय पत्थर की मूर्ति से नहीं है, हम यह नहीं कहते कि पूजा करो। पिता की पूजा थोड़े ही की जाती है। हम तो कहते हैं कि उस पिता को जानो, पहचानो, मानो और याद करो और उसकी आज्ञा का पालन करो।



(जैसे चिट्ठी पर पता होने से चिट्ठी यथा स्थान पर पहुँच जाती है, वैसे ही परमात्मा का भी नाम, धाम आदि का पता होने से याद ठीक जुटती है)

परमात्मा का रूप और नाम-धाम जानने से योगाभ्यास में सफलता

अभी आज हमने परमपिता परमात्मा का जो दिव्य नाम, दिव्य रूप, दिव्य धाम और दिव्यगुणों का परिचय दिया है, उसे अपनी बुद्धि में धारण करके अब आप परमपिता परमात्मा की स्मृति में रहने का पुरुषार्थ कीजिए। परमात्मा को सर्वव्यापक और नाम-रूप से न्यारा मानने से तो परमात्मा की स्मृति भी ठीक प्रकार से न हो सकेगी बल्कि मन इधर-उधर भटकेगा और उसके विकल्पों को रोकने के लिए हठ-क्रियाएँ या कृत्रिम आधार ही याद आयेंगे। परन्तु अब हमने स्वयं परमपिता परमात्मा द्वारा समझाया हुआ जो यथार्थ प्रभु-परिचय आप को दिया है, उसे जानकर तो आप मन को उसकी मधुर-स्मृति में स्थिर कर सकेंगे। उसके लिए सबसे पहले तो आप स्मृति को धारण कीजिये कि—"मैं आत्मा हूँ, ज्योति-बिन्दु हूँ। मैं परमपिता परम-आत्मा की सन्तान हूँ।" स्वयं को परमात्मा की सन्तान निश्चय करते ही आपकी बुद्धि की लग्न परमधाम में एकाग्र हो जायेगी और आपका मन उसके गुणों का रसास्वादन करने लगेगा। "मेरे परमपिता शिव ज्ञान के सागर, शान्ति के सागर, आनन्द के सागर, प्रेम के सागर, सर्वशक्तिमान् तथा त्रिलोकीनाथ हैं, वह पतित-पावन हैं, मुक्ति और जीवनमुक्ति के दाता हैं, सर्व का कल्याण करने वाले हैं, परम-शिक्षक और सद्गुरु हैं", आदि-आदि—इस प्रकार आत्मा में शान्ति, शक्ति और आनन्द का अनुभव होगा क्योंकि 'मनुष्य की जैसी स्मृति होती है, वैसी ही उसकी स्थिति होती है।' यह बात एक दृष्टान्त से स्पष्ट हो जायेगी।



ईश्वरीय स्मृति से आनन्दमय स्थिति—एक दृष्टान्त

मान लीजिए कि एक व्यक्ति अपने मित्रों के साथ महफ़िल मना रहा है और खूब खुश बैठा है। परन्तु उसी समय यदि उसे अकस्मात् ऐक तार आ जाये कि उसकी प्रिय माता का देहान्त हो गया है तो आप जानते हैं कि उसे वही पदार्थ फीके लगेंगे और जहाँ पहले महफ़िल हो रही थी, अब वहाँ मातम का वातावरण बन जायेगा। यह सब क्यों हुआ, क्योंकि अब मनुष्य की स्मृति से महफिल की बात हट गई और मातम की बात आ गई।

इसी प्रकार, आज यदि मनुष्य शान्ति के सागर, आनन्द के सागर और प्रेम के सागर परमपिता परमात्मा की स्मृति को धारण करेगा तो उसकी स्थिति भी शान्त और आनन्दमयी हो जायेगी। अतः आप परमात्मा को 'माता-पिता' और इन गुणों का सागर तथा 'परमधाम का वासी' मानकर इस स्मृति का अभ्यास करो तो देखो कि आपके जीवन में परिवर्तन आता है या नहीं?

जिज्ञासु—हाँ, परिवर्तन ही तो चाहता हूँ। बहन जी, मैं अनेक गुरुओं के पास गया हूँ, मन्दिरों में जाकर खूब पूजा की है, सन्ध्या, यज्ञ आदि खूब किए हैं, परन्तु यह काम-क्रोधादि विकार [illegible] नहीं छोड़ते और जीवन में सच्ची शान्ति नहीं आती। किसी तरह [illegible]

स्थायी सुख और शान्ति परमपिता परमात्मा से आपका जन्मसिद्ध अधिकार है

ब्रह्माकुमारी—[illegible] तो हैं ही, शान्ति के सागर परमपिता परमात्मा की सन्तान। शान्ति का हार तो आपके गले में पड़ा है। आप केवल अपने को और परमपिता को भूले हैं, इसलिए भटकना पड़ा है। वर्ना पिता की सम्पत्ति पर तो बच्चे का अधिकार होता ही है। तो जबकि आप परमात्मा को 'पिता' कहते हैं, तो उनके सुख-शान्ति के अविनाशी और असीम खज़ाने पर तो आपका जन्मसिद्ध अधिकार है ही। शान्ति के लिए गुरुओं और मूर्तियों से माँगने की क्या आवश्यकता है? मुझे इसके लिए एक दृष्टान्त याद हो आया है।

कहते हैं कि एक राजा भक्ति-पूजा कर रहा था। उसके महल में [illegible] आया। परन्तु राजा को पूजा करते देखकर वह कुछ न बोला, [illegible] बाहर, निकट ही में बैठ गया और राजा ने भी मंगते को देख [illegible]

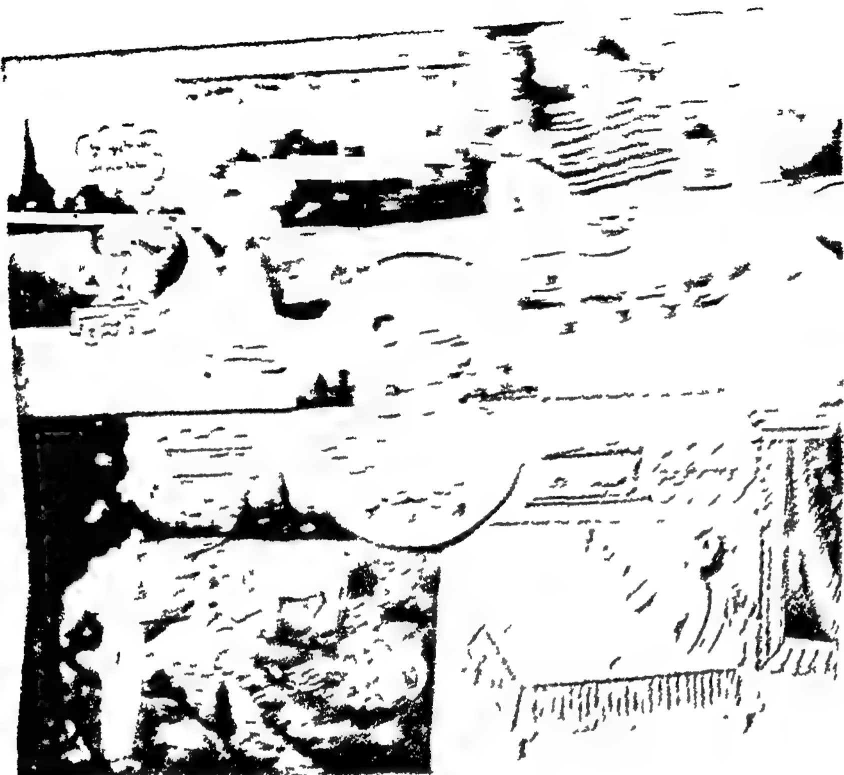
राजा भक्ति करते हुए बोल रहा था—"हे प्रभो! आप ही [illegible] आपने ही मुझे यह राज्य-भाग्य दिया है। प्रभो, मैं तो [illegible]

मेरा तो यहाँ कुछ भी नहीं है। प्रभो, जो कुछ मेरे पास है, सो आप ही का तो दिया हुआ है। हे प्रभु, आप मुझे मन की सच्ची शान्ति दो।" भिखारी भी बाहर बैठा यह सब सुन रहा था। वह आया तो था राजा से माँगने के लिये, परन्तु जब उसने यह देखा कि राजा स्वयं भी परमात्मा से माँग रहा है अथवा वह कह रहा है कि "प्रभो, यह सब-कुछ आप ही का दिया हुआ है," तब उसने सोचा कि मैं फिर राजा से क्यों माँगूँ? क्यों न मैं भी उस एक ईश्वर ही से माँगूँ जो कि राजा का भी दाता है? यह सोचकर, वह बिना कुछ माँगे ही, वहाँ से उठकर चल दिया। राजा ने देखा कि दर पे आया व्यक्ति खाली हाथ लौट रहा है, तो वह मंगते को आवाज़ देकर कहने लगा–"ज़रा रुको, मैं अभी उठता हूँ।" परन्तु मंगता अब रुकने वाला थोड़े ही था। उसने कहा, "राजन्, बस, मैंने देख लिया है कि आप भी भगवान् ही से माँगते हो। मैं फिर आपके आगे हाथ क्यों फैलाऊँ? मैं भी उसी समर्थ पिता ही से माँगूँगा।"

परमपिता, परम शिक्षक, सद्गुरु परमात्मा से ही सर्व आत्मिक सम्बन्ध जोड़ो!

इसी प्रकार, गुरुओं और मूर्त्तियों से माँगने की बजाये,क्यों नहीं आप भी शान्ति के सागर, आनन्द के सागर, सर्वशक्तिमान् और पतित-पावन परमपिता परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ते? हमने जो उदाहरण दिया है वह तो भक्तों का है। परन्तु आपको तो अब परमपिता परमात्मा का ज्ञान मिला है और आपको यह भी बताया गया है कि आप उसके बच्चे हैं। तो आपको माँगने की या प्रार्थना करने की क्या ज़रूरत है? समर्थ बाप के बच्चे किसी से माँगते थोड़े ही हैं? आपका उस पिता से सम्बन्ध टूटा हुआ है, इसलिए कमी पड़ गई है, वर्ना शान्ति के सागर पिता का पुत्र हो, उसे शान्ति के लिए भटकना पड़े–यह कैसे हो सकता है? इसलिए परमपिता परमात्मा शिव की आज्ञा है कि "हे वत्स! तू सब तरफ से यहाँ तक कि लौकिक गुरुओं आदि से भी मन को हटाकर, एक मेरी शरण में आ। तू मुझ एक से प्रीति जुटा तो मैं अपनी सारी सम्पत्ति सहित तेरा हो जाऊँगा। वत्स, तू शोक मतकर, मैं तुझे सभी पापों से मुक्त होने की सहज युक्ति बताऊँगा और तुम्हें अपने परमधाम अर्थात् शान्तिधाम ले चलूँगा और सुख की दुनिया अर्थात् स्वर्ग में भी पवित्रता और दिव्यगुणों से युक्त सुख का स्वराज्य दूँगा।" अतः आज अगर आप सच्ची और स्थायी शान्ति चाहते हैं तो उस शान्ति के सागर, परमपिता को याद करो। उस ही की पावन स्मृति से जन्म-जन्मान्तर के विकर्म दग्ध होंगे जिन पापों के बोझ के कारण ही जीवन दुःखी और अशान्त है। परमपिता की अनन्य स्मृति से ही खराब संस्कार मिटेंगे

[illegible]



(हरेक शरीर में आत्मा है न कि परमात्मा। आत्मा जैसा कर्म करती है वैसा ही वह फल भोगती है। परमात्मा में तो लोग छल, बुद्धि [illegible] आदि मानते हैं, अतः [illegible] आदि में परमात्मा को व्यापक मानना तो परमात्मा की निन्दा करने के तुल्य है। परमात्मा तो पतित-पावन और सुख-शान्ति का दाता है, अतः यदि परमात्मा सर्व-व्यापक होता तो कोई भी मनुष्य पतित और दुःखी न होता। परमात्मा तो केवल धर्म-ग्लानि ही के समय इस संसार में आकर धर्म की स्थापना कर जाते और सभी को सुख-शान्ति का वरदान दे जाते हैं। उनके इन कर्त्तव्यों को समझने से आप मानेंगे कि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है बल्कि परमधाम का वासी है। किसी को 'महात्मा' कहने का यह भाव नहीं होता कि वह आत्मा औरों से अधिक लम्बी-चौड़ी है, बल्कि यह भाव होता है कि वह अधिक पवित्र है, उसी प्रकार 'परमात्मा' भी आकार में सबसे अधिक लम्बा-चौड़ा नहीं है बल्कि पवित्रता, शक्ति तथा गुणों की दृष्टि से सर्व-महान् है।)

परमात्मा क्या करता है और क्या नहीं करता?

ब्रह्माकुमारी—आपने परिचय का जो फार्म भरा है, उसमें आपने लौकिक पिता का तो व्यवसाय निश्चित रूप से लिखा है परन्तु पारलौकिक परमपिता परमात्मा का दिव्य कर्त्तव्य आपने क्या लिखा है?

जिज्ञासु—बहन जी मैंने यह लिखा है कि परमात्मा ही सब-कुछ कराता है। कहावत भी है कि—"करन-करावन आपे ही आप, मानुष के कुछ नाहीं हाथ।" बहन जी, मनुष्य क्या चीज है? वह तो कुछ भी नहीं कर सकता। परमात्मा के हुक्म के बिना तो पत्ता भी नहीं हिल सकता। यह सब उसकी रचना है। बहन जी, वही सब कुछ करता-कराता है। यही तो उसकी महिमा है।

क्या सब-कुछ परमात्मा ही करा रहा है?

ब्रह्माकुमारी—तो क्या खूनी जब खून करता है, चोर जब चोरी करता है और लुटेरा जब लूटता है तो क्या ये सब अपराध परमात्मा ही करता या कराता है? क्या इससे परमात्मा की महिमा सिद्ध होती है? अगर ये सब-कुछ भी परमात्मा ही करता है तो सरकार को न्यायालय और कानून और जेल बनाने की क्या आवश्यकता है? अगर परमात्मा ने ही खून कराया अथवा डाका डलवाया तो फिर डाकू को दण्ड क्यों मिलना चाहिए, खूनी को फाँसी पर क्यों लटकाया जाना चाहिए? क्या परमात्मा बैठकर पत्ता-पत्ता हिलाता है, यही महानता समझी है आपने परमात्मा की? परमात्मा जब सर्वमहान् है तो उसके कर्त्तव्य भी महान् होंगे या वृक्षों के पत्ते हिलाना और चोरी-चकारी, खून-डकैती आदि-आदि कराना उसके कर्म होंगे? भगवान् ने तो कहा है कि मेरे कर्म **'दिव्य'** हैं और भगवान् को तो **'शिव'** अर्थात् **कल्याणकारी** कहा जाता है, उसे तो सुखदाता और शान्ति-दाता माना जाता है।

जिज्ञासु—बहन जी, खून या चोरी आदि कराना तो परमात्मा के कर्म नहीं हो सकते और भगवान् के पत्ते हिलाने की भी कोई आवश्यकता नहीं है, वह तो हवा के चलने से, न कि उसके हुक्म से हिलते हैं। जब हम परमात्मा के बारे में यह उक्ति सुनते थे—"भगवान् ही तो सब-कुछ कराते हैं" तो हमारे मन में भी यह प्रश्न

उठता अवश्य था कि अपराधियों-जैसे काम परमात्मा थोड़े ही कराता होगा और कि यदि परमात्मा ही ऐसे कर्म करता-कराता है तो मनुष्यों को क्यों दण्ड मिलता है? बहन जी, सब-कुछ परमात्मा नहीं करता बल्कि परमात्मा के लिये तो प्रसिद्ध है कि वह रचना, पालना और संहार आदि करता है।

ब्रह्माकुमारी—रचना, पालना और विनाश—यह शब्द तो आपने कहे, परन्तु इनका अर्थ क्या है? परमात्मा जैसे ये कर्त्तव्य करता है, वह कर्त्तव्य कैसे होते हैं?

जिज्ञासु—बहन जी, माता के गर्भ में बच्चे को जो शरीर मिलता है उसकी रचना परमात्मा करता है। इसलिये परमात्मा ही को 'पैदा करने वाला' अथवा 'रचयिता' कहा जाता है। ये जो आकाश में बादल बनते हैं, वर्षा होती है, सूर्य चमकता है—यह सब परमात्मा ही के कार्य हैं। इसलिये, लोग उसका गुणगान करते हुए कहते हैं कि—"तू वर्षा बरसाता है, तू सूरज चमकाता है। तूने यह संसार बनाया, तू ही सबका दाता है" यह सारा संसार उसी ने तो रचा है, नदी-नाले सब उसी के ही तो रचना-कार्य हैं।

क्या परमात्मा ही शरीर की रचना करता और सूर्य चमकाता या वर्षा करता है?

ब्रह्माकुमारी—सोचिये तो, आपका अपना विवेक क्या कहता है? बच्चा तो काम विकार से पैदा होता है जिस विकार से संन्यासी अथवा महात्मा लोग दूर भागते हैं और लोगों को भी कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन करो। बच्चे का शरीर तो माता-पिता के विषय-विकार से पैदा होता है। भगवान् से तो लोग प्रार्थना करते हैं कि—"मेरे विषय-विकार मिटाओ।" बच्चा जब जन्म लेने को होता है तब उसको धारण करने वाली माता को तो दुःख होता है। परन्तु भगवान् को तो 'दुःख-हर्त्ता' और 'सुख-कर्त्ता' कहा गया है। इन बातों को सोचकर भला आप ही बताइये कि क्या बच्चों को भगवान् पैदा करता है? बच्चे को तो उसके माता-पिता पैदा करते हैं, तभी तो रचयिता को 'पिता' कहा जाता है? अगर भगवान् ऐसा जन्म देते, जिसे कि लोग "गर्भ जेल में होने वाला जन्म" मानते हैं, तब भक्त और संन्यासी लोग यह क्यों कहते हैं कि—"प्रभो, जन्म-मरण से छुड़ाओ।" भगवान् के कर्त्तव्य तो उच्च, 'सुखदायक' और महिमा-योग्य हैं तो अवश्य ही वह कोई अन्य प्रकार का जन्म देना होगा।

इसी प्रकार, यह जो बादल बनते हैं, यह भगवान् थोड़े ही बनाता है। ये तो स्कूलों में छोटे बच्चों को भी पढ़ाया जाता है कि सूर्य-ताप से सागर और नदियों का

जल, जल-वाष्प का रूप धारण करता है और ऊँचा आकाश में उठकर जब ठण्डे स्थान पर पहुँचता है तो मेघ रूप धारण करता है। ये प्रकृति के कार्य हैं। प्रकृति में भी तो शक्ति है, जैसे कि अग्नि, बिजली, ध्वनि आदि शक्तियां हैं। प्रकृति के कार्यों को परमात्मा के कार्य मानना तो अज्ञानता है।

आप जानते होंगे कि जब वर्षा का जल पहाड़ों पर से उतरता है या जब पहाड़ों पर की बर्फ पिघलने से पानी नीचे बहता है या वह मैदान में जो अपना रास्ता बनाकर आता है, उसे ही 'नदी' कहते हैं। नदियाँ कई बार अपना रास्ता बदलती भी हैं और गाँव भी तबाह कर देती हैं। तो यह कहना ठीक थोड़े ही है कि परमात्मा भी नदी-नाले आदि बनाता है।

इसी प्रकार सूर्य का उदय होना या दिन का चढ़ना भी सूर्य के सामने पृथ्वी के घूमने के परिणामस्वरूप होता है। प्रकृति के आकर्षण-विकर्षण को अथवा हलचल आदि को परमात्मा के कार्य मानना तो परमात्मा और प्रकृति के भेद को न जानना है। परमात्मा के ऐसे ग़लत कार्य बताये जाने के कारण ही तो बहुत-से लोग नास्तिक हो गये हैं क्योंकि विज्ञान द्वारा जानते हैं कि ये कार्य तो प्रकृति के हैं, ये 'परमात्मा' कहे जाने वाले किसी चेतन के नहीं हैं।

क्या यह सृष्टि भगवान् ने रची है?

फिर आप ही सोचिये कि परमात्मा तो निराकार है। उसके कोई हाथ-पाँव आदि तो नहीं, और कोई भी साकार वस्तु बिना इन्द्रियों अथवा स्थूल साधनों के बिना बन ही नहीं सकती। तब भला कैसे माना जाय कि निराकार परमात्मा ने साकार सृष्टि रची है? यह परमात्मा द्वारा रची हुई नहीं हो सकती क्योंकि परमात्मा की तो अपनी काया ही नहीं है। यदि कहा जाय कि परमात्मा ने पहले अपना शरीर बनाया, बाद में उसने यह सृष्टि रची, तो यह भी नहीं माना जा सकता क्योंकि साकार शरीर को बनाने के लिए भी तो साकार साधन चाहिएँ। अतः आपको मालूम रहे कि यह सृष्टि अनादि है और प्रकृति-पुरुष का खेल है। प्रकृति की अपनी शक्तियाँ और अपने कार्य हैं, लेकिन परम-पुरुष अर्थात् परमात्मा के कर्त्तव्य दोनों से न्यारे हैं। वह रचयिता है अवश्य, परन्तु इस अर्थ में नहीं कि जिस अर्थ में आपने बताया है।

इसी प्रकार, परमात्मा द्वारा पालना तथा संहार के जो दिव्य कर्त्तव्य होते हैं, उनका भी वह अर्थ नहीं है जो प्रायः लेते हैं। भला आप जानते हैं कि 'पालना' और 'संहार' के कर्त्तव्य क्या हैं?

जिज्ञासु—बहन जी, भगवान् ही तो सबका पालन करते हैं। हमें जो अन्न-धन मिलता है, वह भगवान् ही तो देते हैं। उसे ही 'रोज़ी अर्थात् कमाई देने वाला' कहा गया है; उसी ने ही हमारे लिए ये जल, वायु आदि भी मुफ्त में दिए हैं और 'लहर' का अर्थ यह है कि मनुष्य की मृत्यु भी उसी के हाथ में है। इसलिए जब कोई मर जाता है तो लोग कहते हैं कि—"ईश्वर को यही मंज़ूर था।" कई लोग [illegible] कहते हैं कि—"ईश्वर भी अन्याय करता है, उसने हमारा बच्चा [illegible] है।" अब वास्तविकता क्या है, वह आप ही बताइये। रचना के [illegible] आपने कहा है, वह तो बात मेरे मन लगती है। परमात्मा [illegible] बिच्छू, टिंडन, साँप आदि बनाता होगा? ये सब [illegible] विष्ठा में कीड़े पैदा होते हैं, तो क्या परमात्मा उनको पैदा [illegible] उन्हें मार क्यों देते हैं? तो बहन जी, आप बताइये कि [illegible] जो प्रचलित मान्यता मैंने कही है, वही ठीक है या [illegible]

क्या परमात्मा ही सबको रोज़ी देता है?

ब्रह्माकुमारी—आप भी तो विचार कीजिये, [illegible] देखो, कोई व्यक्ति दिन-भर मज़दूरी करके [illegible] अपने बाल-बच्चों का पेट पालता है, तो [illegible] बाल-बच्चों को पालता है और उसे कमाई [illegible] पेट-भर रोटी नहीं मिलती और उन्हें [illegible] क्या यही परमात्मा द्वारा पालना है? नहीं, नहीं [illegible] है, वैसा ही उनका फल भोगना है। [illegible] निर्धन के घर जन्म लेता है, कोई [illegible] पूर्व-कर्मों के कारण है, इसमें [illegible]

इसी प्रकार, जल, वायु [illegible] बनायेंगे कि प्रकृति अनादि है; [illegible] रचना है। हाँ, उसका [illegible] 'पालनहार' नहीं [illegible] वरदान देता है जिससे [illegible] जल, वायु उसे [illegible] मनुष्य को [illegible]

क्या परमात्मा ही मृत्यु के लिए निमित्त बनता है?

जब कोई मरता है तो वास्तव में यह नहीं कहा जा सकता कि 'परमात्मा ने इसे छीन लिया' या परमात्मा ने इसका संहार किया। नहीं! ऐसा कहना तो गोया परमात्मा पर दोष लगाना है। मान लीजिये, हैज़ा हो जाने के कारण कोई मर गया तो क्या परमात्मा ने उसे मार दिया? नहीं। उस व्यक्ति ने बद-परहेज़ी की अथवा उसकी पाचन-शक्ति कमज़ोर थी। हैज़े के कारण उसका शरीर ऐसा दुःख-दायक हो गया कि आत्मा ने उसे छोड़ दिया अथवा उस शरीर द्वारा आत्मा का भोग्य और काल दोनों समाप्त हो गये और हैज़े के कारण उसका अन्त हो गया। इसमें परमात्मा का क्या दोष है? किसी ने दूसरे को कत्ल कर दिया तो क्या ऐसा कहेंगे कि परमात्मा नें उसे मारा या उसका संहार किया? नहीं।

तो स्पष्ट है कि परमात्मा के जो कर्त्तव्य स्थापना, विनाश और पालना नाम से आज प्रसिद्ध चले आते हैं, वह कुछ और प्रकार के हैं और उच्च तथा **गायन के योग्य** तथा सभी को सुख देने वाले हैं। परमात्मा को तो 'कल्याणकारी' कहा गया है, तो अवश्य ही उसके कर्त्तव्यों द्वारा भी विश्व का कल्याण होता होगा।

जिज्ञासु—बहन जी, यह बात ठीक है। परमात्मा के उन कर्त्तव्यों का परिचय दीजिये।

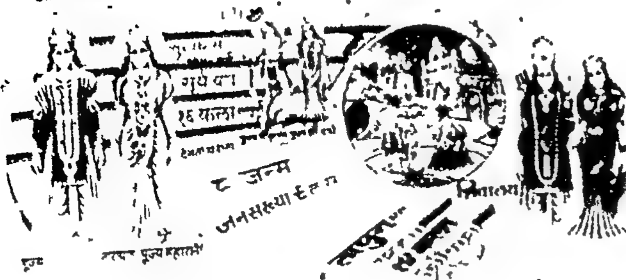
सृष्टि-चक्र कैसे फिरता है?

ब्रह्माकुमारी—परमात्मा के दिव्य नाम, रूप, धाम और गुणों का परिचय तो हमने कल आपको दिया था। अब आप पहले थोड़ा इस सृष्टि-चक्र को समझिये क्योंकि परमात्मा के कर्त्तव्य इस सृष्टि ही से सम्बन्धित हैं। (चक्र का चित्र आगे पृष्ठ ५९ पर देखिए)

देखिये, यहाँ संसार-चक्र का जो चित्र दिया है उसमें स्वस्तिक का चिह्न समय को चार बराबर भागों में बाँट रहा है। लोग स्वस्तिक की रेखा को शुभ मानते और हर कार्य के प्रारम्भ में इसे बनाते तो हैं। परन्तु इसके अर्थ और महत्त्व को नहीं जानते। इस चक्र में सबसे पहले सतयुग दिखाया गया है। यहाँ स्वस्तिक की भुजा दायीं ओर है क्योंकि दायीं भुजा अच्छाई अथवा शुभ की सूचक मानी जाती है। इस आदिकाल में सनातन धर्म के लोग दैवी गुण-कर्म-स्वभाव-वाले थे और तब उन्हें सम्पूर्ण सुख-शान्ति प्राप्त थी। आज भी देखिये, यदि कोई मनुष्य अच्छे स्वभाव वाला होता है तो लोग कहते हैं कि यह तो जैसे कोई देवता है अथवा सतयुगी व्यक्ति

भारत के उत्थान और पतन क ८४ जन्मों की अद्भुत कहानी

जो कि पतित पावन ज्ञान सागर गीता ज्ञान दाता परम पिता परमात्मा शिव सुना रहे हैं।





भ्रष्टाचारी पुजारी

नर्क)

वेश्यालय

रूपी दिन के इस संगम समय ही परमात्मा ज्ञानामृत पिलाते तथा आत्माओं
पिस ब्रह्मलोक में ले जाने (गाईड करने) का कर्त्तव्य करते हैं। इसी कारण,
तक भी मनुष्यात्माएँ कहती हैं कि–'हे प्रभु, हमें अपने पास बुला लो।' लोग
हैं मार्ग-प्रदर्शक और मुक्तिदाता (Liberator और Guide) कहते हैं। यह
र्तव्य करने के कारण ही परमात्मा सबके **सद्गुरु** भी हैं। मनुष्य-मात्र को
चयिता का ज्ञान और रचना का इतिहास समझाने के कारण ही वह **परम शिक्षक**
भी हैं।

जिज्ञासु–आपके कहने का यह भाव हुआ कि परमात्मा कल्प में एक ही बार अवतरित होते हैं। यह जो कहा गया है कि परमात्मा 'युगे-युगे' अर्थात् हर युग में अवतार लेते हैं, क्या यह गलत है?

परमात्मा का अवतरण कब होता है?

ब्रह्माकुमारी–सतयुग और त्रेतायुग में तो सत्य धर्म स्थित होता ही है। अतः इन दो युगों में परमात्मा के आने की क्या आवश्यकता है? धर्म की हानि तो द्वापरयुग से शुरू होती है। तब यदि परमात्मा अवतरित होकर धर्म की स्थापना और अधर्म का विनाश कराये तो द्वापरयुग के बाद तो सतयुग आना चाहिए परन्तु वास्तव मे तो द्वापरयुग के बाद तो कलियुग आता है। तो स्पष्ट है कि कलियुग के अन्त मे जबकि धर्म की अत्यन्त हानि होती है और मनुष्य-मात्र आसुरी सम्प्रदाय के बन जाते हैं तभी परमात्मा शिव अवतरित होते हैं।

जिज्ञासु–परमपिता परमात्मा शिव अधर्म का और आसुरी सम्प्रदायों का महाविनाश कैसे कराते हैं?

सृष्टि का महाविनाश कब और कैसे?

ब्रह्माकुमारी–प्राकृतिक प्रकोप, विश्वयुद्ध और भारत मे पारस्परिक गृह-
आदि के द्वारा महाविनाश भी आवश्यक है–वर्ना संसार में सम्पूर्ण सुख-शा
नहीं हो सकती। रात का अन्त होता है तब दिन आता है। कलियुगी लक्षणों क
अन्त किया जाता है तब सतयुग आता है। सतयुगी और त्रेतायुगी सृष्टि ही स्
और द्वापरयुगी तथा कलियुगी सृष्टि ही नरक है। कलियुग में जनसंख्या बहु
है, सतयुग में बहुत थोड़ी। तो लोग जानते नहीं कि कलियुग के अन्त के बा
आत्माएँ कहाँ गईं? वास्तव में महाविनाश के परिणामस्वरूप वे मुक्तिधा
ब्रह्मलोक को लौट गईं। अतः विनाश तो गुप्त रूप में कल्याणका

सुख और धन-सम्पत्ति की प्राप्ति होती है वह संगमयुग में विष्णु को लक्ष्य मानने के फलस्वरूप होती है, इसलिए ही कहा गया है कि 'विष्णु द्वारा ही सतयुग और त्रेतायुग की सृष्टि का पालन होता है।' दूसरे, चूँकि सतयुग में विष्णु के साकार प्रतिनिधि-रूप श्री लक्ष्मी और श्री नारायण और उनके वैष्णव वंश का और त्रेतायुग में श्री सीता-श्री राम और उनके वैष्णव वंश का राज्य होता है और उस काल में आज की तरह कोई निर्धनता, मोहताज़ी आदि भी नहीं होती बल्कि स्वतः या सहज ही सब-कुछ प्राप्त होता है, इसलिए भी कहा गया है कि 'विष्णु द्वारा सतयुगी और त्रेतायुगी सृष्टि का पालन होता है।' जैसे आज नगर में नगरपाल और प्रदेश में राज्यपाल आदि-आदि होते हैं परन्तु उन्हें कोई इस अर्थ में '**राज्यपाल**' नहीं कहा जाता कि वे लोगों को मुफ़्त अन्न-जल देते हैं, इसी प्रकार यहाँ भी 'पालन' शब्द का कोई ऐसा अर्थ नहीं है। बल्कि इस शब्द का यह भावार्थ है कि विष्णु के चारों अलंकार जिस पवित्रता के प्रतीक हैं, वह पवित्रता धारण करने से सतयुग और त्रेतायुग में मनुष्य का स्वतः ही पालन होता रहता है और वह वैष्णव कुल में जन्म लेकर श्री लक्ष्मी-श्री नारायण अथवा श्री सीता-श्री राम आदि लोकपालों के दैवी राज्य में अपार सुख भोगता है।

यह जो मैंने आपको सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग का चक्र समझाया है, यह हूबहू ऐसे ही पुनरावृत्त होता रहता है।जैसे आज आपको रचयिता अर्थात् परमपिता परमात्मा शिव का और रचना अर्थात् सृष्टि-चक्र का ज्ञान दिया है, कल्प के बाद फिर हूबहू इन्हीं शब्दों में, इसी समय, इसी रूप में आपको यह ज्ञान मिलेगा।

जिज्ञासु—यह तो बड़े आश्चर्य की बात है! बहन जी, यह हूबहू ऐसे ही होगा, फिर मेरा यही नाम, यही माता-पिता, यही सम्बन्धी और यही परिचय होगा? यह कैसे?

सृष्टि के इतिहास की हूबहू पुनरावृत्ति का रहस्य

ब्रह्माकुमारी—आत्मा रूपी एक्टर तो वही हैं, कोई नई आत्मायें तो बनती नहीं हैं। तो हर एक आत्मा ने जो इस कल्प में अपना पार्ट बजाया है, अगले कल्प में भी वह वैसे ही बजायेगी क्योंकि सभी आत्माओं का अपना जन्म-जन्मान्तर का पार्ट स्वयं आत्मा में ही भरा हुआ है। जैसे टेपरिकार्ड में अथवा ग्रामोफ़ोन रिकार्ड में कोई नाटक या गीत भरा होता है, वैसे ही इस छोटी-सी ज्योति-बिन्दु रूप आत्मा में अपने जन्म-जन्मान्तर का पार्ट भरा हुआ है। यह कैसी रहस्य-युक्त बात है! छोटी-सी

आत्मा में मिनट-मिनट का अनेक जन्मों का पार्ट भरा होना, यही तो वन्डर है! यह पार्ट हर ५,००० वर्ष के बाद पुनरावृत्त होता है क्योंकि हरेक युग की आयु बराबर है और १,२५० वर्ष है।

सृष्टि-चक्र घूमने की अवधि

जिज्ञासु—बहन जी, शास्त्रवादी तो कहते हैं कि द्वापरयुग की आयु कलियुग से दुगुनी, त्रेतायुग की कलियुग से तीन-गुणा और सतयुग की चार-गुणा होती है।

ब्रह्माकुमारी—परन्तु दुगुनी-तिगुनी आयु किस आधार पर मानी जावे? हरेक युग की आयु तो बराबर होती है। हाँ, द्वापरयुग में **'धर्म की कलायें'** कलियुग से दुगुनी, त्रेतायुग में तिगुनी या अधिक और सतयुग मे चौगुनी अर्थात् १६ कलाएँ होती हैं। स्वस्तिक से भी यही संकेत मिलता है कि हरेक युग की आयु बराबर होती है क्योंकि स्वस्तिक भी **सृष्टि-चक्र** को चार बराबर भागों में बाँटता है। परमपिता परमात्मा शिव ने भी समझाया है कि आदि सनातन देवी-देवता धर्म के क्षीण होने पर जब इब्राहिम द्वारा दूसरा **धर्म** (इस्लाम धर्म) स्थापित हुआ और देवता वाम मार्ग में गये, तबसे ही द्वापरयुग शुरू हुआ और तबसे अब (कलियुग के अन्त) तक २,५०० वर्ष व्यतीत हुए हैं और ये २,५०० वर्ष दुःख के थे। इससे पहले २,५०० वर्ष सुख के थे। इस प्रकार यह सुख-दुःख का खेल ५,००० वर्ष का है। यह **मनुष्य-सृष्टि तो अनादि है परन्तु इसमें यह खेल ५,००० वर्ष में एक बार पूरा होकर फिर पुनरावृत्त होता है।**

चतुर्युग की आयु

जिज्ञासु—शास्त्रवादी लोग तो चतुर्युग की आयु ४ अरब वर्ष से भी कुछ अधिक मानते हैं।

ब्रह्माकुमारी—जी हाँ, परन्तु कलियुग की आयु तो वे भी १,२०० वर्ष ही मानते हैं लेकिन एक तो वे कलियुग की भेंट में दूसरे युगों की आयु दुगुनी, तिगुनी और चौगुनी मानते हैं जो कि वास्तव में गलत है और, दूसरे वे हरेक वर्ष को **दिव्य वर्ष** अर्थात् मनुष्यों के ३६० वर्षों के बराबर मानते हैं। यह भी सरासर भूल है क्योंकि उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव पर हर छः मास का दिन, छः मास की रात अर्थात् एक वर्ष का एक पूरा दिन तो होता है जिसे कि एक **'दिव्य दिन'** भी कहा गया है। किन्तु **दिव्य वर्ष** तो कोई होता ही नहीं है। अतः हर कलियुग के १,२ [illegible] र्षों को ३६० से गुणा करने की भूल के कारण तथा द्वापरयुग की आयु कलि [illegible] त्रेतायुग की

तिगुनी मानने के कारण शास्त्रवादियों ने कल्प की आयु अरबों वर्ष मानी है। वास्तव में दिव्य वर्ष तो कोई होता ही नहीं है और सभी युगों की आयु भी बराबर-बराबर होती है।

जिज्ञासु—मुझे पहले भी किसी ने कहा था कि स्वयं शास्त्रों में भी 'दिव्य दिन' का तो वर्णन है परन्तु 'दिव्य वर्ष' का नहीं है।

ब्रह्माकुमारी—कुछ भी हो, कल्प की आयु तथा स्थापना, विनाश और पालना का रहस्य तो उन कर्त्तव्यों को कराने वाला तथा जन्म-मरण से न्यारा परमात्मा स्वयं ही बता सकता है। कोई मनुष्य तो इसका सत्य ज्ञान दे नहीं सकता। अतः हम तो परमपिता परमात्मा से प्राप्त ज्ञान ही आपको स्पष्ट कर रही हैं कि कल्प की आयु ५,००० वर्ष है।

और, विवेक का प्रयोग करने पर भी आप देखेंगे कि ५,००० वर्ष पहले महाभारत काल में जैसे मूसल और ब्रह्मास्त्र आदि बने थे, अब फिर हूबहू वैसे ही बन गये हैं और अब परमपिता परमात्मा भी अवतरित होकर फिर से गीता-ज्ञान दे रहे हैं।

किञ्चित आप सोचिये कि यदि कल्प की आयु अरबों वर्ष होती तब तो परमपिता परमात्मा सृष्टि के आदि-मध्य-अन्त के इतिहास का ज्ञान भी दे सकते? और ज...-मरण के चक्कर में दुःख भोगते-भोगते मनुष्यात्मा का तो क्या बुरा हाल हो जाता यदि कलियुग में लगभग ४,२७,००० वर्ष बाकी माने जायें तब तो पता नहीं क्या हाल होगा!!

फिर यह भी विचार करने की बात है कि २,००० वर्षों में ही ईसाई धर्म के लोगों की संख्या एक अरब के लगभग हो गई है। अगर कल्प की आयु अरबों वर्ष होती तो सबसे पहले धर्म अर्थात् आदि सनातन देवी-देवता धर्म के लोगों की संख्या तो आज अनगिनत होनी चाहिए थी, परन्तु आज इतनी है कहाँ?

अतः आप देखेंगे कि कर्म-संन्यासियों ने कल्प की आयु के बारे में मिथ्या मत संसार में फैलाया है। इधर तो सृष्टि के महाविनाश के लिए ऐटम और हाईड्रोज़न बम तैयार हैं और जनसंख्या भी अधिक वृद्धि को प्राप्त हुई है और उधर लोगों ने मनुष्यों को यह उल्टा मत देकर अज्ञान-निद्रा में सुला दिया है कि 'कलियुग अभी बच्चा है', इसके तो अभी लगभग ४,००,००० वर्ष और शेष रहते हैं।

अस्तु! हमने सृष्टि-चक्र और उसकी पुनरावृत्ति का ईश्वरीय ज्ञान आपको इसलिये सुनाया है कि आपको यह पता लगे कि अब परमपिता परमात्मा स्वयं ज्ञानामृत पिला रहे हैं। अब यदि उस द्वारा जीवन को आप दिव्य और उच्च बना लेंगे

तो आपका ऐसा पार्ट हरेक कल्प में पुनरावृत्त होगा। यदि आपने अब उच्च पुरुषार्थ न किया तो कल्प-कल्पान्तर के लिए भाग्य गँवा बैठोगे। दूसरे, यह मत सोचो कि कलियुग अभी बच्चा है, बल्कि ऐसा समझो कि अभी तो कलियुग का थोड़ा ही समय शेष बचा है। ऐसा जानकर अब पूर्ण पवित्र बनने तथा योगयुक्त बनने का तीव्र पुरुषार्थ करो।

परमात्मा को सर्वव्यापी मानकर आपने जन्म-जन्मान्तर जो पुरुषार्थ किया उसके परिणामस्वरूप आपका कैसा जीवन बना, वह तो आज आप जानते ही हैं। अब परमात्मा को पिता मानकर तथा उनके दिव्य नाम, धाम आदि के ज्ञान को धारण करके उनसे योग लगाओ तो देखो कि जीवन में क्या लाभ होता है! प्रैक्टीकल पुरुषार्थ करने से आपको यह पूरा निश्चय होगा कि सचमुच परमात्मा का तो नाम और धाम है, वह सर्वव्यापक नहीं है।

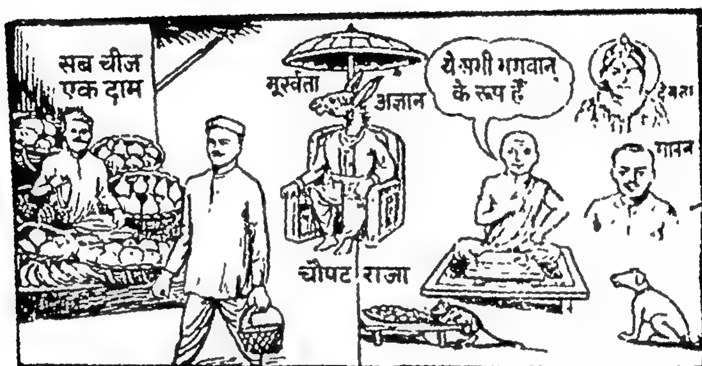
जिज्ञासु—बहन जी, यह तो विवेक-युक्त बात है। जैसे चीनी लेने के लिए मनुष्य चीनी वाले की दुकान पर जाता है, फल लेने के लिए फल वाले की दुकान पर और सब्ज़ी लेने सब्ज़ी वाले के पास जाता है और वहाँ वह चीज़ लेकर सन्तुष्ट होता है। इसी प्रकार, यदि ब्रह्म धाम के वासी ज्योति-बिन्दु की स्मृति में स्थित होने से मनुष्य को पवित्रता, शान्ति, शक्ति, और आनन्द की प्राप्ति होती है तो समझना चाहिए कि परमात्मा का यही परिचय सत्य है अर्थात् वह सर्वव्यापक नहीं है।

ब्रह्माकुमारी—जी हां, अब इसका अभ्यास करना और कल आप इन प्रश्नों के उत्तर भी लिख लाना:—

प्रश्न

१. 'स्थापना, विनाश और पालना' का क्या अर्थ है?
२. क्या सब कार्य परमात्मा की प्रेरणा से हो रहे हैं या आत्मा स्वयं ही करती और फल भोगती है?
३. आप कैसे मानते हैं कि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है? कोई चार मुख्य युक्तियाँ पेश कीजिये?
४. शिव और शंकर में क्या अन्तर है?
५. क्या आत्मा ही परमात्मा है या दोनों में कुछ अन्तर है?

अन्धेर नगरी चौपट राजा।
टके सेर भाजी टके सेर खाजा।।



परमात्मा तो सर्व-आत्माओं का कल्याणकारी परमपिता, परमशिक्षक और परम सद्गुरु है और नर को श्री नारायण बनाने वाले हैं। आज मनुष्य विकारी है परन्तु संन्यासी लोग कहते हैं कि देवता, विकारी-मनुष्य, कुत्ता, चूहा आदि सभी भगवान् ही के रूप है। यह कहना तो ऐसा है जैसे कि कोई कहे कि 'टके सेर भाजी और टके सेर खाजा' है। सचमुच यह तो 'अन्धेर नगरी चौपट राजा' वाला मामला है।)

मनुष्य-सृष्टि रूपी विराट रचना

ब्रह्माकुमारी—कल हमने सृष्टि रूपी अद्भुत खेल समझाया था और इसकी पुनरावृत्ति के रहस्य को भी स्पष्ट किया था। याद है ना?

जिज्ञासु—जी हाँ। पाँच युगों का चक्र अनादि काल से कैसे फिरता आया है और अब सृष्टि की घड़ी में क्या बजा है, अर्थात् अब कौनसा समय चल रहा है, यह पहेली आपने समझाई थी।

ब्रह्माकुमारी—इस सृष्टि रूपी रचना को अभी अच्छी तरह समझना है। कर्म-संन्यासी तो कहते हैं कि—'यह जगत् बना ही नहीं, यह संसार मिथ्या है, यह स्वप्न-मात्र है।' परन्तु अब त्रिकालदर्शी परमपिता परमात्मा ने हमें इस रचना के तीनों कालों के मुख्य-मुख्य वृत्तान्त समझायें हैं, जिन्हें जानना आवश्यक है। भगवान् कहते हैं कि यह सृष्टि मिथ्या नहीं है बल्कि सत्य है, इसका तो एक नियमित इतिहास और भूगोल है। भगवान् ने इसके इतिहास को एक वृक्ष से उपमा दी है जिसे कि 'मनुष्य-सम्प्रदाय का वंश वृक्ष' (Geneological Tree) अथवा 'कल्प वृक्ष' भी कहा जाता है क्योंकि इस द्वारा संसार के मुख्य धार्मिक-राजनैतिक वंशों के आदि-मध्य-अन्त का या सारे कल्प का इतिहास ज्ञात होता है।

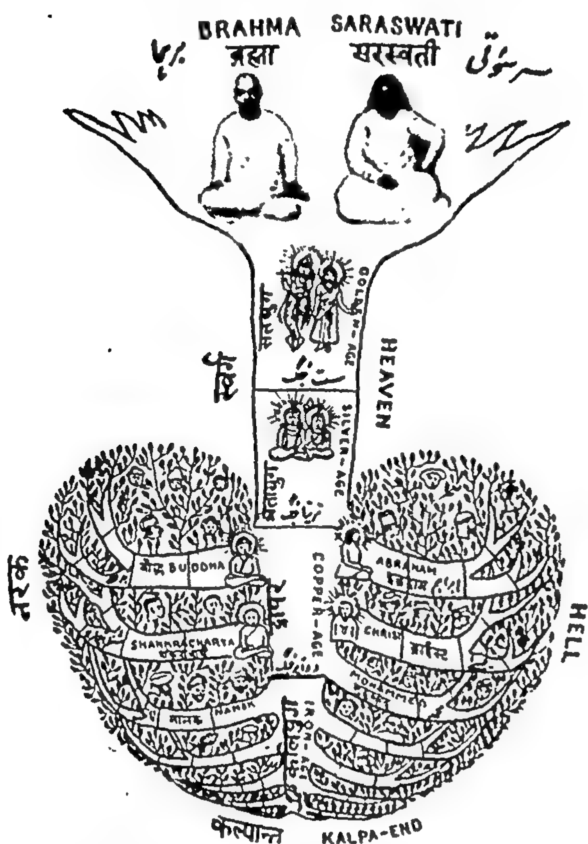
जिज्ञासु—वह कैसे?

ब्रह्माकुमारी—देखिये, इस विराट मनुष्य सृष्टि को (पृष्ठ ८४ ख पर तथा पृष्ठ ७२ पर भी) एक चित्र के रूप में दिखाया गया है। यह चित्र भी उसी त्रिकालज्ञ परमपिता शिव ने दिव्य-दृष्टि देकर दर्शाया है और दिव्य-बुद्धि देकर समझाया है। जैसे लौकिक विद्यालयों में बालकों की सुविधा और उनकी रुचि के लिए अध्यापक किसी सिद्धांत को चित्रों या मान-चित्रों (Maps) द्वारा स्पष्ट करते हैं, वैसे ही परमपिता परमात्मा शिव ने भी संकेत देकर यह चित्र बनवाया है।

सतयुग और त्रेतायुग का वर्णन

इस निराले वृक्ष का स्पष्टीकरण हम इसके तने (Trunk) से शुरू [illegible] विश्व का सबसे पहला धर्म जिसे 'आदि सनातन देवी-देवता धर्म' [illegible] चाहिए, वह यहाँ तने के रूप में दिखाया गया है। तब संसार में एक ही दै[illegible] और एक ही सूर्यवंश था। सतयुग के शुरू में श्री लक्ष्मी और श्री नाराय[illegible] सम्पन्न-सदन राज्य था। तब 'यथा राजा-रानी तथा प्रजा' सभी पाव[illegible]

(यह सृष्टि एक उल्टे वृक्ष के समान है। इसका चित्र दिया गया है। इसका सुन्दर और स्पष्ट रूप पृष्ठ ८४ ख पर चित्रित किया है, उसे देखिये।



निर्विकारी थे और दैवी-गुणों वाले, डबल अहिंसक थे अर्थात् न वे काम-कटारी द्वारा हिंसा करते थे, न क्रोध द्वारा। चूंकि वे पावन थें और श्रेष्ठ कर्म करते थे, इसलिए प्रकृति भी उनके वश में थी अर्थात् तब न प्राकृतिक प्रकोप होते थे और न उन्हें तन का रोग या अन्न-धन की कमी ही होती थी। सभी तत्व सतोप्रधान और सुख के साधन थे। पवित्रता, सुख और शान्ति तीनों से सम्पन्न होने के कारण, उस युग के राजा-रानी और दैवी प्रजाओं को दो ताजों से अर्थात् प्रभामण्डल (लाईट का ताज) से तथा रत्न-जड़ित मुकुट से युक्त दिखाया जाता है।

रखी हैं कि सतयुग में भी हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष्य नाम के दैत्य थे और त्रेतायुग में भी रावण नाम का असुर था जिसने कि राम की सीता को चुराया था। वास्तव में ये कथायें ऐतिहासिक नहीं हैं बल्कि यह आध्यात्मिक रहस्य को स्पष्ट करती हैं वर्ना सतयुग में न हिरण्यकशिपु थे, न त्रेतायुग में रावण। श्री लक्ष्मी-श्री नारायण अथवा देवताओं के राज्य में भला पृथ्वी पर असुर क्या हो सकते हैं? देवताओं पर तो असुरों की दृष्टि भी नहीं पड़ सकती। सतयुग के सतोप्रधान काल में भला असुर अर्थात् पतित मनुष्य कहाँ से आये?

जिज्ञासु—तो क्या सतयुग और त्रेतायुग में असुर नहीं थे? फिर लोग आज तक दशहरा आदि क्यों मनाते चले आते हैं?

क्या सतयुग और त्रेतायुग में कोई असुर नहीं थे?

ब्रह्माकुमारी—भला आप सोचिए कि क्या दस सिर वाला कोई मनुष्य हो सकता है? क्या लगातार छः महीने तक कोई मनुष्य सो सकता है, जैसे कि कुम्भकरण के लिए कहा गया है? मैं आगे एक दिन आपको बताऊँगी कि इस सारी कथा का भावार्थ क्या है, वर्ना रावण को ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में तो स्वयं लंका देश के लोग भी नहीं मानते। 'रावण' के दस सिर तो स्त्री और पुरुषों में पाँच-पाँच विकारों के प्रतीक हैं। अतः रावण 'माया' अथवा विकारों का प्रतीक है।

जिज्ञासु—हाँ, दस सिर वाला कोई व्यक्ति हो—यह तो मुझे भी असम्भव-सा ...। था। और भी बहुत-सी बातें, जैसे कि सीता जी का भूमि के नीचे दबे हुए घड़े में से निकलना, मुझे आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। ऐसे ही हिरण्याक्ष्य और हिरण्यकशिपु की जो कथा भागवत् में लिखी है वह भी बड़ी विस्मयकारी है और ऐतिहासिक नहीं मालूम होती है। 'रावण' शब्द का अर्थ है—'रुलाने वाला'। विकार अथवा माया ही मनुष्य को रुलाने वाली है। अतः यह जो आपने कहा है कि रावण के दस सिर स्त्री-पुरुष में पाँच-पाँच विकारों की विद्यमानता के सूचक हैं, यह कथन ठीक लगता है। बहनजी, ठीक है, आप जब विस्तारपूर्वक इनका आध्यात्मिक रहस्य बतायेंगी तब मैं इन्हें पूरी तरह समझने की कोशिश करूँगा। अच्छा, तो आपने सतयुग और त्रेतायुग के इतिहास का सार मुझे समझाया। फिर क्या हुआ?

द्वापरयुग का वर्णन

ब्रह्माकुमारी—त्रेतायुग के बाद द्वापरयुग आया। अब तक सूर्यवंश और चन्द्रवंश की आत्मायें सुख-सम्पत्ति की सृष्टि में जन्म-पुनर्जन्म लेते-लेते देह

पदार्थों में आसक्त हो गयी थी। वे देह-अभिमानी हो गयी थीं। अब काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार की थोड़ी-थोड़ी छाया उन पर पड़ने लगी थी इसलिए अब वे पावन और पूज्य पद से गिर कर विकारी और पुजारी बन गयी थीं। आत्म-विस्मृति के कारण और पवित्रता भंग होने के कारण अब प्राकृत नियम भी भंग होने लगे और प्रकृति भी अपनी मर्यादा को छोड़कर थोड़ा-सा दुःख देने लगी थी।

फिर भी अभी लोगों में धर्म के प्रति भावना थी। परन्तु ज्ञान न होने के कारण वे भक्ति करने लगे। सबसे पहले शिव परमात्मा की पूजा शुरू हुई। लोग चूँकि बहुत धन-धान्य से सम्पन्न थे। इसलिए तब मन्दिर भी बहुत आलीशान और स्वर्ण से मण्डित तथा रत्न-जड़ित होते थे। धीरे-धीरे चतुर्भुज श्री विष्णु की, श्री लक्ष्मी-श्री नारायण की, श्री राधे-श्री कृष्ण की, श्री सीता-श्री राम आदि-आदि देवी-देवताओं की भी पूजा शुरू हुई। वेद, शास्त्र, ग्रन्थ आदि लिखे जाने लगे। यज्ञ, हठ योग, तप, तीर्थ, कर्म-काण्ड आदि में भी लोग अपना समय और धन लगाने लगे। परन्तु सतयुग और त्रेतायुग में जैसी पवित्रता थी और जैसा सतोगुण था अब तो उसके बारे में केवल उक्तियाँ, गायन और कथाएँ ही उपलब्ध हैं। भक्ति और पूजा आदि करने के बावजूद भी लोग काम, क्रोधादि विकारों से न छूट सके बल्कि दिनों-दिन वे विकारों की दलदल में अधिकाधिक फँसने लगे। उत्तरोत्तर गिरावट ही आती गई और शैव, वैष्णव, शाक्त आदि अनेक अलग-अलग सम्प्रदाय, पंथ और मठ आदि बनते गये। मतभेद, शास्त्रार्थ और लड़ाई-झगड़ा बढ़ता ही गया। लोग रजोगुणी थे और उनकी भक्ति भी धीरे-धीरे नाना रूप धारण करती गयी और इसलिये अनेक लौकिक कामनाओं से युक्त हो गयी।

अन्य धर्मों की स्थापना

अब एक सत्य सनातन धर्म के भ्रष्ट होने से इस मनुष्य-सृष्टि रूपी वृक्ष से अन्य अनेक धर्म-शाखाएँ निकलनी शुरू हुईं। आज से लगभग २,५०० वर्ष पहले इब्राहिम ने इस्लाम धर्म स्थापित किया। लगभग २,००० वर्ष पूर्व ईसा ने ईसाई धर्म स्थापित किया। १,५०० वर्ष पूर्व शंकराचार्य ने धर्म-संन्यास सम्प्रदाय स्थापित किया और कोई १,४०० वर्ष पूर्व मुहम्मद ने मुसलमान धर्म स्थापित किया। इस प्रकार, परमधाम से अन्यान्य धर्मों की आत्माएँ भी सृष्टि-म
आती गयीं। जनसंख्या जो कि सतयुग के आदि में लगभग ९ लाख थी
बढ़ती जा रही थी। पहले सृष्टि में एक धर्म था; अब अनेक

अनेक भाषाएँ और अनेक वंश हो गये। इस प्रकार, कलह-क्लेश और द्वैत बढ़ने लगा। १,२५० वर्ष ऐसी ही स्थिति रही।

जिज्ञासु–अच्छा, फिर इसके बाद क्या हुआ?

कलियुग का वर्णन

ब्रह्माकुमारी–१,२५० वर्ष के द्वापर के बाद कलियुग शुरू हुआ। अब मनुष्य-सृष्टि रूपी वृक्ष की शाखाएँ-प्रशाखाएँ और बढ़ने लगीं। यह झाड़वृद्धि को प्राप्त होता गया और समस्याएँ, मतभेद और लड़ाई-झगड़े आदि और भी बढ़ने लगे। भारत के आदि सनातन धर्म के लोग तमोप्रधान हो गये। वे आसुरी लक्षणों तथा आसुरी मर्यादाओं को अपनाते गये और अति विकारी तथा भ्रष्टाचारी बनते गये। अब प्रकृति,तत्वों की भी पूजा होने लगी और बहुत लोगों ने धर्म को भी धन्धे अथवा कमाई के साधन के रूप में अपना लिया और जात-पात के, साम्प्रदायिक तथा विरोधी धर्मों के बीच झगड़े खूब होने लगे। स्त्री को भोग ही का साधन माना जाने लगा और सतयुग तथा त्रेतायुग में उन्हें जो मान और स्थान प्राप्त था, उसकी बजाय अब उनका तिरस्कार होने लगा। अब प्रकृति भी मनुष्य के लिए कष्ट देने का कारण बन गयी। रोग, शोक, वृद्धावस्था और अकाल-मृत्यु आदि से मनुष्य पीड़ित होने लगे।

द्वापरयुग में इस्लाम, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म आदि जो भी धर्म स्थापित हुए थे, अब तक वह भी अपनी पहली, दूसरी और तीसरी अवस्थाओं में से गुजर कर अपनी **चौथी** अर्थात् अत्यन्त गिरावट की अवस्था को आ पहुँचे। उदाहरण के तौर पर, ईसा ने कहा था कि यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर तमाँचा मारे तो दूसरा गाल भी उसके आगे कर दो। परन्तु आज ईसाईयों में वह अहिंसा है कहाँ? आज तो वे बम बना रहे हैं। ऐसा ही हाल दूसरे धर्मों का भी है। इस प्रकार, सतयुग के आदि से लेकर कलियुग के अन्त तक का संक्षिप्त धार्मिक-राजनैतिक इतिहास जो कि हमें परमपिता परमात्मा शिव ने समझाया है, मैंने आपको सुनाया है।

जिज्ञासु–जब ऐसी स्थिति हो जाती है तब क्या होता है?

संसार में धर्म-ग्लानि और महाविनाश, यादवों के पेट से कौन-से मूसल निकले थे?

ब्रह्माकुमारी–जब इस प्रकार सभी धर्म अपनी अत्यन्त गिरावट की अवस्था को अर्थात् तमोप्रधान अवस्था को प्राप्त होते हैं और सभी नर-नारी आसुरी लक्षणों

वाले अर्थात् आसुरी सम्प्रदाय का रूप धारण कर लेते हैं, तब संसार में हाहाकार मच जाता है। यह पापाचार और धर्म-ग्लानि का समय होता है। तब संसार में रूस और अमेरिका के दो प्रमुख राजनैतिक दल बन जाते हैं। ये देश ऐटम और हाइड्रोजन बम, जिन्हें कि महाभारत की भाषा में 'ब्रह्मास्त्र', 'आग्नेयास्त्र' आदि कहा गया है, और 'मिसाईलस' (Missiles) जिन्हें कि '**मूसल**' कहा गया है, बनाते हैं। ये लोग खूब शराब पीते, आसुरी लक्षणों को धारण करते और अन्त में आपस में लड़कर विश्व का महाभारी विनाश करते हैं। इन्हें ही महाभारत की शब्दावली में '**यादव**' कहा जा सकता है। महाभारत में तो लिखा है कि 'यादवों के पेट से मूसल निकले थे और उन्होंने आपस में लड़कर अपने कुल का विनाश स्वयं किया था'। परन्तु आप सोचिए कि पेट से भला मूसल कैसे निकल सकते हैं और उनसे विनाश कैसे हो सकता है? मुहावरे में कहा जाता है कि–"इस व्यक्ति के पेट में बात नहीं रहती"। इसका अर्थ यही होता कि "यह व्यक्ति बात को अपनी बुद्धि तक न रखकर, मुख से दूसरों को सुना देता है।" बात होती तो बुद्धि में है परन्तु मुहावरे में 'पेट' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार, यादव कोई पेट से मूसल नहीं निकालते बल्कि वे लोग बुद्धि से इसका आविष्कार करते हैं। जो आविष्कार करते हैं, उन्हें वैज्ञानिक कहा जाता है। अतः अमेरिका और रूस, ये दो देश ही मुख्य रूप से इनका आविष्कार करते हैं और यही प्रसिद्ध-कथा के '**यादव**' लोग हैं। पृष्ठ नं. ८४ ख पर हमने चित्र में इन्हें जंगली बिल्लों के रूप में दिखाया है जो कि विश्व-राज्य (World-Power) के लिए आपस में लड़ते और मरते हैं।

भारत में विकार और हाहाकार

दूसरी ओर भारत के लोग भी देह-अभिमानी हो जाते हैं। वे भाषा-भेद, मत-भेद, नीति-भेद, धर्म-भेद, प्रान्त-भेद और जाति-भेद आदि के आधार पर एक-दूसरे के खून के लिए तैयार हो जाते हैं। परमपिता परमात्मा से विपरीत-बुद्धि, ये लोग दैवी मर्यादा को छोड़कर, खूब उच्छृङ्खलता करते हैं। वे शासन और अनुशासन को तोड़कर, एक-दूसरे पर आक्रमण करते तथा अपने ही देश की सम्पत्ति को नष्ट करने पर उतारू होते हैं। जिस भारत में शेर और गाय भी एक-घाट पानी पीते थे, अब वहाँ के लोग एक-दूसरे के खून के प्यासे होते हैं। कन्याएँ अपना वर अपने आप माँगने लगती हैं। स्त्रियों में लज्जा मिटने लगती है। पुरुष स्त्री को केवल वासना-तृप्ति ही का साधन मानने लगते हैं। भारत कंगाल और मोहताज हो जाता है। जब ऐसी स्थिति होती है तो धर्म-भ्रष्ट और कर्म-भ्रष्ट

लोग अनेक सेनायें बनाकर आपस में लड़ते और मरते हैं। जहाँ दूध और घी की नदियाँ बहती थीं, वहाँ पवित्रता के नष्ट होने के कारण अब खून की नदियाँ बहती हैं। एक-दूसरे को "आत्मा-आत्मा भाई-भाई" समझने की बजाय, लोग दैहिक-दृष्टि से देखते और परस्पर शत्रु मानते हैं। सभी लूट-खसूट, मिलावट, रिश्वत, कुल-पक्षपात, भ्रष्टाचार, अन्याय और सत्ता-लिप्सा के वश होकर एक-दूसरे के प्रेम को छोड़कर दानवों की तरह लड़ते हैं। ऐसे ही धर्म-विमुख और अत्याचारी तथा ईश्वर-विपरीत लोग, लाक्षणिक भाषा में 'कौरव' कहे गये हैं। यों तो सभी देहाभिमानी, धर्म-भ्रष्ट और ईश्वर-विमुख लोग कौरव हैं परन्तु उनमें से **भी विशेष तौर पर उनको 'कौरव' मानना चाहिये जो लोगों को हिंसात्मक तरीके अपनाने के लिये उकसाते रहे हैं और जिनकी गति-विधि से मत भेद को बढ़ावा मिला है तथा जिन्होंने श्रेष्ठाचार की शिक्षा दिये जाने के लिये कोई व्यवस्था नहीं की।**

परमपिता परमात्मा का अवतरण कब और किस तन में?

इधर, सतयुगी, आदि सनातन देवी-देवता धर्म की पुनः स्थापना के लिए परमपिता परमात्मा शिव भारत में उस साधारण मनुष्य के तन में अवतरित होते हैं जो कि सतयुग के आदि में पूज्य श्री नारायण था परन्तु सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में पूज्य या पुजारी के रूप में जन्म-पुनर्जन्म लेते-लेते अब एक विकारी और भक्त मनुष्य के रूप में होता है। उसके तन में प्रवेश करके परमपिता परमात्मा शिव उसको **'प्रजापिता ब्रह्मा'** नाम देते हैं और उसके मुख से वास्तविक ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग की शिक्षा देते हैं। वे फिर भारतवासियों को सम्पूर्ण निर्विकारी और सतोप्रधान बनने की शिक्षा देते हैं।जो इस शिक्षा को धारण करते, परमपिता परमात्मा से प्रीत-बुद्धि बनने का अभ्यास करते तथा पवित्र बनते हैं और दूसरों की भी इसी ज्ञान और योग के द्वारा सेवा करते हैं, वे ही 'ब्रह्माकुमारी' और 'ब्रह्माकुमार' अथवा प्रजापिता ब्रह्मा के मुख-कमल (अर्थात् मुख द्वारा दिये गये ईश्वरीय ज्ञान) से पैदा हुए 'ब्राह्मण' कहलाते हैं, वे ही वास्तव में **पाण्डव** हैं। वे इसी एक जन्म में मानव से देवता अथवा नर से श्री नारायण अर्थात् पुरुषोत्तम बनने का पुरुषार्थ करते हैं। इसलिए, कलियुग के अन्त और सतयुग के आदि के बीच के इस थोड़े से समय को **'पुरुषोत्तम युग'** अथवा **'संगमयुग'** कहते हैं। इस शुभ, कल्याणमय युग में परमपिता परमात्मा शिव अवतरित होकर भारत को फिर से स्वर्ग बनाते हैं। कल्प-वृक्ष के चित्र में तने के भी नीचे, पुराने सृष्टि वृक्ष और नये वृक्ष

के संगम पर उन्हें योग में बैठे दिखाया गया है क्योंकि पुरानी कलियुगी सृष्टि के मनुष्यों को ही परमपिता शिव परमात्मा पावन करके सतयुगी बनाते हैं अर्थात् सतयुगी सृष्टि रचते हैं।

सृष्टि का महाविनाश कैसे?

जब इस प्रकार मनुष्यों को कलियुगी से सतयुगी बनाने का कार्य पूरा होने पर आता है तब अमेरिका, रूस और यूरोपवासी **'यादव'** आपस में लड़ते हैं और दूसरी ओर भारत के देहाभिमानी लोग कौरव आपस में लड़ते हैं और जिसके फलस्वरूप विश्व का महाभारी विनाश हो जाता है, और उसके बाद जनसंख्या अत्यन्त कम रह जाती है। विनाश के इस कार्य में प्राकृतिक प्रकोप अर्थात् बाढ़, भूकम्प, अग्निकाण्ड और दुर्भिक्ष आदि भी मदद देते हैं। इस प्रकार विनाशकाल में शरीर छोड़कर आत्माएँ परमधाम अर्थात् ब्रह्मलोक को लौट जाती हैं। परन्तु, वहाँ मुक्ति अवस्था को प्राप्त होने से पहले रास्ते में धर्मराजपुरी में उन्हें अपने रहे हुए बुरे कर्मों के फलस्वरूप सूक्ष्म रूप में बहुत कड़ा दण्ड भोगना पड़ता है। उसके बाद ही वे ब्रह्मलोक में जाकर मुक्ति की अवस्था में रहती हैं।

परन्तु जो आत्माएँ ईश्वरीय ज्ञान और योग रूप पुरुषार्थ द्वारा अपने विकर्म दग्ध करतीं, स्वयं को पावन बनातीं, अपने जीवन में दिव्यगुण धारण करतीं, दूसरों को भी योग-युक्त करके पावन बनाने की सेवा करतीं तथा काम-क्रोधादि विकारों पर पूर्ण विजय प्राप्त करने का पुरुषार्थ करती हैं, वे धर्मराजपुरी में दण्ड नहीं भोगती हैं बल्कि सम्मान-सहित (With Honours) परमधाम को लौटती हैं और मुक्ति अवस्था में रहकर, फिर सतयुग के आरम्भ में आकर, स्वर्ग का अटल, अखण्ड, निर्विघ्न और अति सुखकारी स्वराज्य भोगती हैं। इस प्रकार यह सृष्टि अनादि है क्योंकि जब यह मनुष्य-सृष्टि रूपी वृक्ष पुराना होकर जड़जड़ीभूत हो जाता है, तब परमात्मा उसका विनाश करने से पहले नयी सृष्टि का कलम लगा देते हैं और इसका पूर्ण विनाश कभी भी नहीं होता।

अब कौनसा युग चल रहा है?

अब संगमयुग का कल्याणकारी समय चल रहा है। इसका भी बहुत समय बीत गया है, थोड़ा ही समय शेष रहा है। थोड़े-से समय में से भी ईश्वरीय ज्ञान और योग की धारणा का तथा परमपिता शिव से यह सर्वोत्तम विद्या सीखने का समय तो बहुत ही थोड़ा रहा है। अतः आप भी अब ही मनुष्य से देवता अथवा नर से श्री नारायण बनने का सर्वोत्तम पुरुषार्थ कर सकेंगे, वर्ना फिर कभी नहीं।

क्या मुक्ति को प्राप्त कर आत्मा फिर इस सृष्टि में आती है?

जिज्ञासु—बहन जी, मुक्ति और जीवनमुक्ति अर्थात् स्वर्ग में देव-पद की प्राप्ति को तो अब मैं अपने जीवन का लक्ष्य मान चुका हूँ और उसके लिए पूरा पुरुषार्थ भी करूँगा। परन्तु अभी-अभी आपने यह जो कहा कि सृष्टि के महाविनाश के बाद आत्माएँ ब्रह्मलोक में मुक्ति की अवस्था में रहेंगी और अगले कल्प में फिर अपने-अपने समय पर इस सृष्टि में आकर शरीर धारण करेंगी, इससे तो यही भाव प्रकट होता है कि मुक्ति के बाद आत्मा को फिर इस सृष्टि में आना पड़ेगा? तो क्या मुक्ति के बाद आत्मा फिर भी आयेगी?

पहली युक्ति

ब्रह्माकुमारी—आप किंचित साधारण विवेक से सोचिए कि यदि मुक्ति के बाद आत्माएँ ब्रह्मलोक में ही सदा के लिए रहें तब तो सृष्टि रूपी खेल ही खत्म हो जाएगा क्योंकि कोई नई आत्माएँ तो बननी नहीं हैं बल्कि जितनी भी अनादि-अविनाशी आत्माएँ हैं, उन्हीं से यह खेल चलना है। आप कहेंगे कि यह खेल चलने की जरूरत ही क्या है? परमपिता परमात्मा को तो इसकी कोई ज़रूरत नहीं है, परन्तु ज़रूरत तो आत्माओं को है क्योंकि 'कामना' तो आत्मा का लक्षण । अतः जैसे आत्मा मुक्ति की कामना करती है, वैसे ही वह किसी समय इस संसार म आकर सुख भोगने की भी कामना करती है, वरना तो यह संसार आज होता ही न।

दूसरी युक्ति

दूसरे, आप सोचिये कि **'मुक्ति'** का अर्थ है—**'छुटकारा'**। छुटकारा तो **'बन्धन'** से ही होता है। अतः इस शब्द से ही सिद्ध है कि मुक्ति से पहले आत्मा बन्धन में थी परन्तु **'बन्धन'** शब्द से स्पष्ट होता है कि आत्मा पहले निर्बन्धन अथवा मुक्त थी, और अब फिर मुक्त होना चाहती है। अतः जबकि पहले भी आत्मा मुक्ति की अवस्था से आकर बाद में बन्धन में पड़ गई थी, तो स्पष्ट है कि अब इस बन्धन से मुक्त होने के बाद, वह फिर दोबारा पहले जीवनमुक्ति-अवस्था में आयेगी और फिर बन्धन में भी आयेगी ज़रूर। यह तो जीत-हार का खेल है।

तीसरी युक्ति

भला आप बताइये तो सही कि अगर मुक्ति अवस्था प्राप्त करने के बाद आत्मा इस संसार में न लौटती तो संसार में उत्तरोत्तर जनसंख्या में वृद्धि क्यों होती जाती?

क्या मनुष्य-गणना में हर आये दिन वृद्धि को देखकर आप यह नहीं मानते कि इस लोक में जो आत्माएँ मनुष्य रूप में व्यक्त थी वे तो पुनर्जन्म ले रही हैं, उनके अतिरिक्त और आत्माएँ भी ब्रह्मलोक से इस सृष्टि-मंच पर आ रही हैं अर्थात् मुक्ति की अवस्था वाली आत्माएँ भी आकर साकार हो रही हैं।

चौथी युक्ति

ज़रा यह भी विचार कीजिए कि—'क्या मुक्ति कोई प्राप्त होने वाली अवस्था है या कोई नित्य स्वाभाविक गुण है?' यदि मुक्ति आत्मा का स्वाभाविक गुण होता तब तो आत्मा 'परमात्मा' की तरह जन्म-मरण और सुख-दुःख के बन्धन में भी न आती और तब तो आत्मा और परमात्मा में कोई अन्तर भी न रहता और यह संसार रूपी खेल ही न होता। परन्तु आत्मा का जन्म-मरण के चक्कर में आना, कर्म-बन्धन और सुख-दुःख भोगना तथा मुक्ति के लिए कामना और पुरुषार्थ करना ही सिद्ध करता है कि 'मुक्ति' आत्मा का नित्य स्वाभाविक गुण नहीं है बल्कि इसे वह सदा-मुक्त परमात्मा के संग अथवा योग से अथवा वरदान के रूप में प्राप्त करती है। मुक्ति की इच्छा भी सिद्ध करती है कि आत्मा ने पहले इसका अनुभव किया है परन्तु अब वह अवस्था नहीं है। जो अवस्था पहले थी, वह अब नहीं है, वह फिर होके एक-समय आने पर फिर से नहीं रहेगी, वरना उसकी इच्छा न करनी पड़ती।

छहवीं युक्ति

हमने आपको पहले भी बताया था कि हरेक आत्मा में ही उसका अनादि पार्ट अव्यक्त रूप में समाया हुआ है और इस अनादि तथा पुनरावृत होने वाले नाटक में वह हर ५,००० वर्ष के बाद फिर अपना पार्ट हूबहू पुनरावृत करती है। आत्मा तो क्या स्वयं परमात्मा भी धर्म-ग्लानि के समय इस सृष्टि में आकर तन लेते हैं। परन्तु जैसे बच्चा खेल से थककर और हारकर कुछ उदास हो जाता है और जाकर सो जाता है परन्तु सदा सोया भी नहीं रहना चाहता बल्कि फिर उठकर खेल खेलना चाहता है, ठीक उसी प्रकार आत्मा भी इस सृष्टि रूपी नाटक में माया से हारकर तथा अनेक जन्म कर्म करते-करते जब दु:खी होती है और बन्धन अनुभव करती है तब मुक्ति की इच्छा करती है। फिर एक समय आने पर वह पुनः इस संसार में आकर खेल खेलना चाहती है।

इस संसार में सतयुग और त्रेतायुग में तो सम्पूर्ण सुख है, दु:ख का नाम नहीं है। द्वापरयुग में भी मामूली दु:ख है। कलियुग के आदि में भी बहुत अधिक दु:ख नहीं होता। परन्तु अभी कोई ३००-४०० वर्ष पहले से ही अधिक दु:ख का समय शुरू [illegible] है। उसमें से भी ये अन्तिम १०० वर्ष अत्यन्त दु:ख के हैं। अतः इस नाटक का [illegible]। समय तो सुख ही का है और आत्मा इस सृष्टि में आकर सुख भोगना चाहती है—यह उसकी कामना है। परन्तु अब इस संसार में अधिक दु:ख देखने के कारण वह मुक्ति प्राप्त करना चाहती है और लौटना भी नहीं चाहती। किन्तु मुक्ति प्राप्त करने के बाद वह पुनः यहाँ आने की कामना करेगी और आकर पहले सुख का और बाद में दु:ख-मिश्रित सुख का पार्ट बजायेगी क्योंकि वह अनादि-अविनाशी एक्टर है।

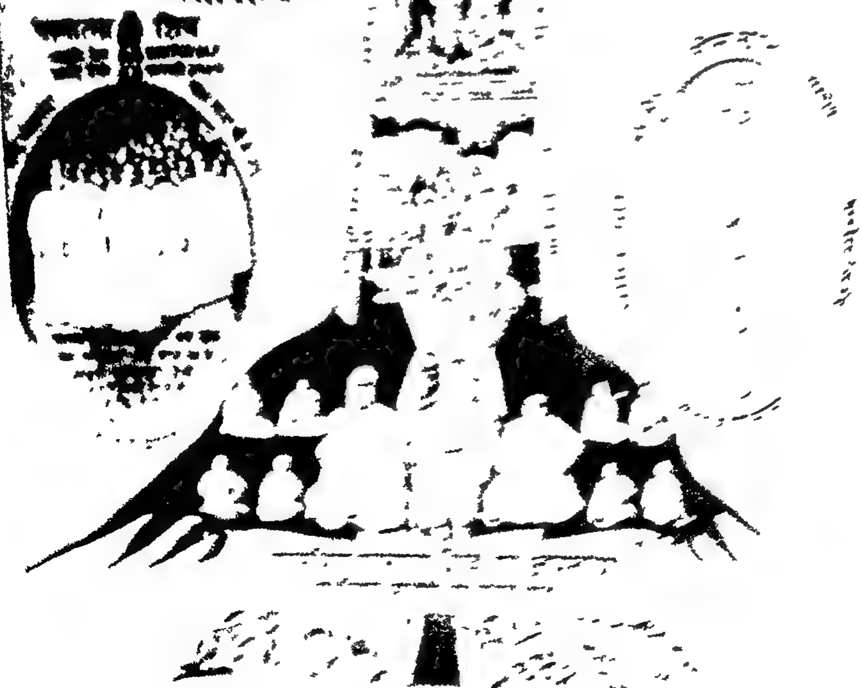
जिज्ञासु—इसका मतलब यह हुआ कि आत्मा परमात्मा में लीन नहीं होती?

क्या आत्मा कभी परमात्मा में लीन होती है?

ब्रह्माकुमारी—क्या एक्टर कभी नाटक के डायरेक्टर (निर्देशक) या ज्ञाता में लीन होता है? यदि आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती तो आत्मा को 'अविनाशी' क्यों कहा जाता है? आपको बताया था कि आत्माएँ अलग-अलग हैं और हर-एक के अलग-अलग अनादि संस्कार हैं।हर एक का अलग-अलग पार्ट है—एक नहीं मिलता दूसरे से। तभी तो आप देखते हैं कि हर एक मनुष्य की देह, आर्थिक स्थिति, संस्कार और विचार आदि एक दूसरे से भिन्न हैं क्योंकि आत्माएँ ही अलग-अलग









परमपिता परमात्मा शिव इन्हीं के मानवी तन में प्रविष्ट, सन्निविष्ट अथवा अवतरित होते हैं, इन्हीं के कमल मुख द्वारा वे ईश्वरीय ज्ञान तथा प्रायः लुप्त सहज राजयोग की शिक्षा देते हैं तथा पवित्रता एवं दिव्यगुण सम्पन्न जीवन का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

हैं। अतः आत्मा के परमात्मा में लीन होने की बात तो बिल्कुल ही मिथ्या है, कल्पना है। आत्मा ब्रह्म नाम के प्रकाश तत्त्व में जाकर मुक्ति की अवस्था में वास करती है। उस अवस्था में उनके मन-बुद्धि-संस्कार अव्यक्त अथवा अपने में 'लीन' (Unconscious) अवस्था में रहते हैं। फिर उन्हीं के आधार पर आत्मा इस सृष्टि में आकर शरीर धारण करती है।

अच्छा आज आपको कल्प-वृक्ष का स्पष्ट परिचय मिला। गायन है कि "कल्प वृक्ष मनुष्य की सभी इच्छाएँ पूर्ण करता है।" वास्तव में वह 'कल्प-वृक्ष' यही है, क्योंकि इस द्वारा सृष्टि रूपी रचना के आदि-मध्य-अन्त को जानकर जो मनुष्य पवित्र और योग-युक्त बनने का पुरुषार्थ करता है, निश्चय ही उसकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं, क्योंकि वह स्वर्ग का राज्य-भाग्य प्राप्त कर लेता है। इसे 'कल्प-वृक्ष' इसलिए कहा गया है कि इस द्वारा सारे कल्प का ज्ञान होता है।

कल्प में कितने युग होते हैं?

जिज्ञासु—बहन जी, सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चारों युगों को मिलाकर ही तो 'कल्प' कहते हैं न?

ब्रह्माकुमारी—वाह! आपने 'पुरुषोत्तम संगमयुग' को तो गिनती ही नहीं किया! वास्तव में यही तो कल्याणकारी युग है। अन्य युगों में तो आत्माएँ ही सुख का या सुख-दुःख का पार्ट इस सृष्टि-मंच पर करती हैं परन्तु परमात्मा शिव का अवतरण और उन द्वारा सभी आत्माओं के कल्याण का कर्त्तव्य तो इसी पुरुषोत्तम संगमयुग में होता है। वास्तव में इसी की याद में भारत में सभी त्यौहार या पर्व आदि मनाए जाते हैं। शास्त्रवादी लोग तो १० चतुर्युग का एक कल्प मानते हैं परन्तु परमपिता परमात्मा शिव ने समझाया है कि एक चतुर्युग और संगमयुग मिलाकर 'कल्प' होता है।

'शिवरात्रि'—परमात्मा शिव का दिव्य-जन्मोत्सव

शिवरात्रि का त्यौहार भी इसी समय से सम्बन्धित है क्योंकि इसी समय, जब सारे विश्व में अज्ञान रूपी रात्रि होती है, तभी ज्ञान-सूर्य परमात्मा प्रकट होकर अज्ञानान्धकार का विनाश करते हैं और फिर सतयुग रूपी दिन आता है। परन्तु आज लोग जैसे सभी युगों में से उत्तम 'पुरुषोत्तम संगमयुग' को नहीं जानते [illegible] सभी आत्माओं से श्रेष्ठ परमात्मा शिव को नहीं पहचानते, [illegible] त्यौहारों में से उत्तम शिवरात्रि त्यौहार के महत्त्व को भी नहीं

संसार के लोगों को आज यह मालूम होता कि शिव ही परमपिता परमात्मा हैं और शिवरात्रि प्रजापिता ब्रह्मा (आदम) के तन में उन्हीं के दिव्य जन्म का स्मरणोत्सव है, तो सभी धर्मों के लोग इसे सर्वश्रेष्ठ-त्यौहार के रूप में मनाते और वे भारत भूमि को, जहाँ कि शिव का अवतरण हुआ, सर्वोत्तम तीर्थ मानते।परन्तु खेद की बात तो यह है कि आज स्वयं भारत के लोग 'परमात्मा' 'सर्वव्यापक' है, ऐसा कहकर स्वयं ही शिवरात्रि के महात्म्य को समाप्त कर देते हैं, क्योंकि जो सर्वव्यापक है उसका तो दिव्य जन्म अथवा अवतरण हो नहीं सकता।

आज स्वयं भारतवासी अनेकानेक महात्माओं, संन्यासियों और राजनैतिक नेताओं आदि के जन्मदिन तो बहुत धूमधाम से कई दिनों तक लगातार मनाते हैं परन्तु यहाँ शिवरात्रि को सभी लोग नहीं मनाते क्योंकि शिव और शिवरात्रि का ज्ञान न होने के कारण लोग या तो इसे एक साम्प्रदायिक त्यौहार समझते हैं या इसे शंकर देवता से सम्बंधित मानते हैं! देखिये तो, जो संगमयुग में परमधाम से आकर भारत को नरक से स्वर्ग बनाता है और मनुष्य-मात्र को मुक्ति और जीवनमुक्ति का वरदान देता है, जो पतित-पावन है और परमपिता है, उसे भारतवासी आज कितना भूले हैं! जो मनुष्य के जीवन को कौड़ी-तुल्य से हीरे-तुल्य अर्थात् पतित से पावन या से देवता बनाता है, उसकी हीरे-तुल्य जयन्ती को भूलकर आज अन्य अर्थात् कौड़ी-तुल्य मनुष्यों की जयन्तियाँ मनाते हैं।

जिज्ञासु—बहन जी, यह तो आपने बड़ी अच्छी बात बताई कि अगर सबको मालूम होता कि शिव परमात्मा है, तो सभी धर्मों के लोग इसे मानते और इससे भारत का तो बहुत ही मान बढ़ जाता!

बहन जी, सृष्टि का यह सचित्र इतिहास तो बहुत ही दिलचस्प है!

ब्रह्माकुमारी—परन्तु, इसको सुनकर अब आपने जीवन में क्या निर्णय किया है? आपको हमने सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग तथा वर्तमान संगमयुग का जो पूरा परिचय दिया और कौरव, पाण्डव तथा यादव सेना का भी वास्तविक बोध कराया, उससे आपने अपने पुरुषार्थ के लिए क्या निर्णय किया है?

जिज्ञासु—यही कि अब पुरुषोत्तम संगमयुग है, अब हमें भी पवित्र बनना है, क्योंकि अब परमपिता परमात्मा शिव सतयुगी सृष्टि रच रहे हैं।

कल्प-वृक्ष द्वारा जीवन को पवित्र बनाने की युक्तियाँ

ब्रह्माकुमारी—हाँ, अब आपने समझा कि वर्तमान समय अनेक जन्मों में से अन्तिम जन्म के भी अन्त का समय है। कोई बूढ़ा हो या बच्चा, अब सृष्टि का

महाविनाश सामने है क्योंकि ऐटम और हाइड्रोजन बम बन चुके हैं, भारत में भी मतभेद आदि विकराल रूप धारण कर चुके हैं और लोग परस्पर विरोध करने के लिए अनेक सेनाएं बना रहे हैं। इधर परमपिता परमात्मा शिव प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा पतितों को पावन कर रहे हैं। तो द्वापरयुग के आदि से लेकर अनेक जन्म तक अज्ञानता और देह-अभिमान के वश होकर जो पाप किये हैं, अब उनको हम योगाग्नि द्वारा ही दग्ध करना है। अब हमें परमपिता परमात्मा शिव द्वारा इस सतयुग की स्थापना के कार्य में ज्ञान-बल, पवित्रता-बल, योग-बल को धारण करके तन-मन-धन से सहयोग देना है क्योंकि इससे ही हमारा भारत फिर स्वर्ग बनेगा और हमारा जीवन भी उच्च बनेगा। तो अब आप 'सच्चे पाण्डव' बनकर ज्ञान के बाणों और योग रूपी कवच के प्रयोग से काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों की विकराल सेना से युद्ध करो क्योंकि अभी इस समय सारा सृष्टि रूपी कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र और युद्ध-क्षेत्र बना हुआ है। आप माया से इस प्रकार 'धर्म-युद्ध' करेंगे तो विश्व का दैवी स्वराज्य प्राप्त करेंगे।

जिज्ञासु—बहन जी, ऐसा पुरुषार्थ तो अब जरूर करेंगे। अब जबकि महाविनाश निकट है तो हमें पवित्र तो अवश्य बनना ही चाहिए।

ब्रह्माकुमारी—इस कल्प-वृक्ष की व्याख्या पर जब आप मनन करेंगे तो जीवन को पवित्र बनाने के लिए तथा शान्ति और दिव्यगुणों की धारणा के लिए आपको और भी बहुत-से ज्ञान-बिन्दु मिलेंगे।

भाँति-भाँति के लोग और अनेक मतें

जिज्ञासु—वह कैसे?

ब्रह्माकुमारी—उदाहरण के तौर पर, आपको यह समझाया गया है कि मनुष्य-सृष्टि में विविधता तथा विभिन्नता है। जैसे वृक्ष का एक पत्ता नहीं मिलता दूसरे से, एक शाखा नहीं मिलती दूसरे से, वैसे ही इस मनुष्य-सृष्टि रूपी वृक्ष में भी एक मनुष्य दूसरे से नहीं मिलता। सभी आत्माएं अनादि-काल से [illegible] हैं। ऐसे नहीं है कि सब एक ही आत्मा अथवा ब्रह्म या परमात्मा [illegible] हैं। नहीं, नहीं, इस आत्मा [illegible] को भगवान का रूप मानना तो अज्ञान [illegible] है। यह तो अनेक आत्माएं हैं जो अपने ही भ्रष्ट-कर्मों के कारण **पतित** हुई हैं [illegible] उनसे अलग, **पतित-पावन** है। [illegible] [illegible] [illegible] है।

संसार के लोगों को आज यह मालूम होता कि शिव ही परमपिता परमात्मा हैं और शिवरात्रि प्रजापिता ब्रह्मा (आदम) के तन में उन्हीं के दिव्य जन्म का स्मरणोत्सव है, तो सभी धर्मों के लोग इसे सर्वश्रेष्ठ-त्यौहार के रूप में मनाते और वे भारत भूमि को, जहाँ कि शिव का अवतरण हुआ, सर्वोत्तम तीर्थ मानते।परन्तु खेद की बात तो यह है कि आज स्वयं भारत के लोग 'परमात्मा' 'सर्वव्यापक' है, ऐसा कहकर स्वयं ही शिवरात्रि के महात्म्य को समाप्त कर देते हैं, क्योंकि जो सर्वव्यापक है उसका तो दिव्य जन्म अथवा अवतरण हो नहीं सकता।

आज स्वयं भारतवासी अनेकानेक महात्माओं, संन्यासियों और राजनैतिक नेताओं आदि के जन्मदिन तो बहुत धूमधाम से कई दिनों तक लगातार मनाते हैं परन्तु यहाँ शिवरात्रि को सभी लोग नहीं मनाते क्योंकि शिव और शिवरात्रि का ज्ञान न होने के कारण लोग या तो इसे एक साम्प्रदायिक त्यौहार समझते हैं या इसे शंकर देवता से सम्बंधित मानते हैं! देखिये तो, जो संगमयुग में परमधाम से आकर भारत को नरक से स्वर्ग बनाता है और मनुष्य-मात्र को मुक्ति और जीवनमुक्ति का वरदान देता है, जो पतित-पावन है और परमपिता है, उसे भारतवासी आज कितना भूले हैं! जो मनुष्य के जीवन को कौड़ी-तुल्य से हीरे-तुल्य अर्थात् पतित से पावन या मानव से देवता बनाता है, उसकी हीरे-तुल्य जयन्ती को भूलकर आज अन्य कलियुगी अर्थात् कौड़ी-तुल्य मनुष्यों की जयन्तियाँ मनाते हैं।

जिज्ञासु—बहन जी, यह तो आपने बड़ी अच्छी बात बताई कि अगर सबको मालूम होता कि शिव परमात्मा है, तो सभी धर्मों के लोग इसे मानते और इससे भारत का तो बहुत ही मान बढ़ जाता!

बहन जी, सृष्टि का यह सचित्र इतिहास तो बहुत ही दिलचस्प है!

ब्रह्माकुमारी—परन्तु, इसको सुनकर अब आपने जीवन में क्या निर्णय किया है? आपको हमने सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग तथा वर्तमान संगमयुग का जो पूरा परिचय दिया और कौरव, पाण्डव तथा यादव सेना का भी वास्तविक बोध कराया, उससे आपने अपने पुरुषार्थ के लिए क्या निर्णय किया है?

जिज्ञासु—यही कि अब पुरुषोत्तम संगमयुग है, अब हमें भी पवित्र बनना है, क्योंकि अब परमपिता परमात्मा शिव सतयुगी सृष्टि रच रहे हैं।

कल्प-वृक्ष द्वारा जीवन को पवित्र बनाने की युक्तियाँ

ब्रह्माकुमारी—हाँ, अब आपने समझा कि वर्तमान समय अनेक जन्मों में से अन्तिम जन्म के भी अन्त का समय है। कोई बूढ़ा हो या बच्चा, अब सृष्टि का

इसलिए, इस रहस्य को जानकर आपको चाहिए कि जब आप देखें कि दूसरों का मत आपके मत से नहीं मिलता तो आप धैर्य धारण करें, क्रोध न करें। जबकि हम जान ही गए हैं कि द्वापरयुग से लेकर **माया** ने ही अनेकता लाई है और इस कलियुगी सृष्टि रूपी रचना में विभिन्नता है, यहाँ तक कि हरेक धर्म के अपने लोगों में भी फूट और मतभेद है, तब फिर दुःखी होने की क्या जरूरत है? अब हम तो यह समझ गये हैं कि अब सतयुगी,एकमत वाली सृष्टि की स्थापना हो रही है और एकमत उन्हीं की हो सकती है जो कि मर्यादा को अपनाते तथा निर्विकारी बनते हैं। इसलिए, अब यदि किसी का विचार हमारे विचार के विपरीत है तो हमें अशान्त नहीं होना चाहिए और कलह नहीं करना चाहिए बल्कि शान्त और धैर्यवत रहते हुए, इस पतित सृष्टि से न्यारा होकर, कमल की भाँति कीचड़ से अलग रहना चाहिए।

एकमत तो अब परमपिता परमात्मा स्थापित कर ही रहे हैं, वरना तो जितने मनुष्य उतने ही मत हैं। अब हमें उस एक परमात्मा शिव ही के **कल्याणकारी-मत अथवा श्रीमत** पर ही चलना है क्योंकि मनुष्यों के जितने मत हैं, उनसे तो संसार में दुःख ही दुःख बढ़ा है। विकारी मनुष्यों के मत तो थोड़ा-बहुत विकारों की ओर ले जाने वाले अथवा गिराने वाले ही होंगे। **पतित से पावन करने वाला मत तो एक कल्याणकारी परमात्मा का ही होना स्वाभाविक है।** अतः अब मनुष्यों के अनेक विपरीत मतो को न सुनकर एक परमात्मा ही का मत सुनना चाहिए जिससे कि बुद्धि में परमात्मा से ही प्रीति बढ़े। सब मनुष्यों को भगवान् का रूप मानकर उनके मतों को ईश्वर का मत मानना तो गोया स्वयं को गिराने का साधना अपनाना है। अब तो सभी माया के हैं, ये ईश्वर के तो क्या हैं, ईश्वर के मत पर भी नहीं है।

जिज्ञासु–यह तो ठीक बात है। बहन जी, आजकल का वातावरण बड़ा खराब है। लोग विकारों की अथवा माया ही की बातें सारा दिन करते है। दूसरा यह जो आपने बताया कि दूसरों के मतों में भी भेद होना इस कलियुगी सृष्टि में स्वाभाविक है और हम तो अब सतयुगी, एकमत वाली सृष्टि में जाने के पुरुषार्थी हैं, यह भी मन को शान्ति देने वाली तथा कलह से बचाने वाली युक्ति है।

सृष्टि में उत्तरोत्तर नैतिक ह्रास अथवा पतन

ब्रह्माकुमारी–अच्छा, दूसरा आपने कल्प-वृक्ष की व्याख्या से यह भी समझ लिया होगा कि भक्ति पूजा, तप, यज्ञ, कर्म-काण्ड और शास्त्र आदि की रचना सब द्वापरयुग में, अर्थात् आत्मविस्मृति काल में तथा रजोप्रधान युग में हुई। द्वापरयुग में

ही यात्रा करने, गुरु आदि की रीति शुरू हुई। परन्तु वह सब-कुछ करने पर भी सृष्टि में सतयुग तो नहीं आया, सृष्टि पावन तो नहीं बनी, लोगों में एकता, प्रेम, आत्मिक-दृष्टि, दैवीगुण आदि तो नहीं आये, बल्कि धर्म के आधार पर झगड़े बढ़ते ही गये और लोग देह-अभिमानी, भोगी, विषयी–विकारी तथा पतित भी होते आये हैं। आज घर-घर में भक्ति होने पर भी काम-कटारी चलती है, क्रोध आता है, लोभ, मोह और अहंकार आदि सब होता है। अतः भक्ति होते हुए भी और अनेक गुरु करने पर भी मनुष्य-मात्र की सद्गति नहीं हुई, बल्कि दुर्गति ही हुई है। सद्गति करने वाला एक सद्गुरु तो एक परमात्मा ही है जिसे 'सत्य-स्वरूप' (Truth) कहा जाता है। वह ही कलियुग के अन्त में धर्म-ग्लानि के समय एक बार अवतरित होकर और अन्तिम जन्म के भी अन्त में ईश्वरीय ज्ञान तथा सहज राजयोग सिखाकर पतित से पावन बनाता है और विनाश द्वारा सभी को मुक्ति धाम वापस ले जाता है। वही आकर विश्व में शान्ति, सतयुगी दैवी स्वराज्य अथवा राम-राज्य स्थापित करता है, वही ज्ञान-अमृत पिलाकर तथा सच्चा राजयोग सिखाकर मनुष्य-आत्माओं को सदा के लिए पूर्ण पवित्रता, सुख और शान्ति प्रदान करता है।

इसलिए, अब जबकि भक्ति, यज्ञ, तप, शास्त्र-पाठ, कर्म-काण्ड, हठयोग और लौकिक गुरु करके जन्म-जन्मान्तर हमने देख लिया कि हम सतोप्रधान अर्थात् देवता नहीं बन रहे, माया पर विजय प्राप्त नहीं कर सके, बल्कि कर्म-बन्धन के रस्सों में और आसुरी संस्कारों की जंजीरों में जकड़ते आये हैं। तो अब हमें बुद्धि की लगन इन सभी से हटाकर एक निराकार, ज्योतिस्वरूप परमपिता परमात्मा शिव ही से लगानी चाहिए। अब 'वही एक परमात्मा, दूसरा न कोई'—हमें यह प्रण कर लेना चाहिए, क्योंकि कल्याणकारी तो वह एक ही है जिसका नाम 'शिव' है। उसके सिवा दूसरा कोई 'मुक्तेश्वर' या 'पापकटेश्वर' है ही नहीं। शान्ति का सागर, आनन्द का सागर वही है; इसलिए उस ही से बुद्धियोग लगाना चाहिए। अर्थात् उस एक ही को 'पतित पावन', तारनहार, खेवनहार, सत्यस्वरूप आदि नामों से याद किया गया है तो सिद्ध है कि दूसरा कोई भी व्यक्ति या साधु, तथाकथित गुरु, संन्यासी आदि मनुष्य की सद्गति नहीं कर सकता। साधुओं का भी परित्राण करने वाला वही एक सभी का परमपिता शिव है। अतः अब तीर्थ-यात्राओं पर भटकना बन्द करके, उसी तीर्थ-स्वरूप परमात्मा की स्मृति रूपी यात्रा पर मन को चलाना चाहिए। अब अग्निहोत्र अथवा स्थूल-यज्ञ करने की बजाय ज्ञानाग्नि जलाकर उसमें विकारों की आहुतियाँ देनी चाहिएं तभी वह

यज्ञ-पुरुष परमात्मा हमसे प्रसन्न होंगे। अब ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग द्वारा अपने जीवन का कल्याण करना चाहिए।

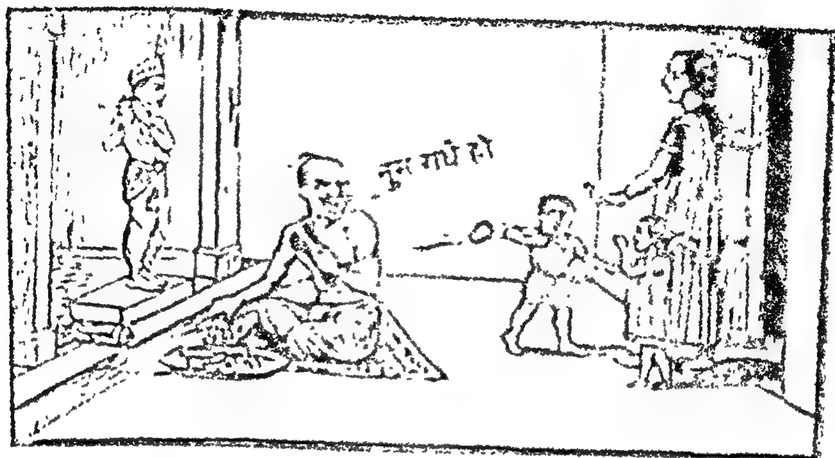
देह-अभिमान ही पतन की जड़

देखो, देह-अभिमान रूपी बीज से अनेकानेक विकारों और अवगुणों रूपी शाखाओं वाला वृक्ष पैदा होता है और आत्मनिश्चय रूपी बीज से सर्व दैवी-गुणों का वृक्ष उत्पन्न होता है। अतः आप आत्मा-निश्चय में स्थित होवें तो आपका जीवन दैवी-गुणों से हरा-भरा हो जायेगा।

इस वंश-वृक्ष को समझने से आपने यह रहस्य भी ग्रहण किया होगा कि जबसे मनुष्य देह-अभिमानी बना तभी से उसका पतन शुरू हुआ, तभी से मतभेद और अनेकता पैदा हुई और तभी से विकार तथा दुःख इस संसार में आये। अतः बार-बार यही बात हमें कहनी पडती है कि अब 'आत्मा-निश्चय' में रहने का अभ्यास करो। अच्छा,कल इन प्रश्नों का उत्तर लिख लाना:–

प्रश्न

१. आदिकाल में इस सृष्टि की क्या अवस्था थी और अब अन्तकाल में इसकी क्या हालत है?
२. सृष्टि में पतन कब से शुरू हुआ और पतन का मूल कारण क्या था?
३. परमपिता परमात्मा का अवतरण कब और किस तन में होता है?
४. युग कितने हैं और सर्वोत्तम युग कौन-सा है और क्यों?
५. अब कौन-सा समय चल रहा है और हमें अब क्या करना चाहिए?
६. मुक्ति होने पर आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है या वह फिर इस सृष्टि में आती है?–इसके कुछ कारण बताइये?
७. इस कल्प वृक्ष को समझने से जीवन को पवित्र और दिव्य-गुणों से सम्पन्न बनाने में क्या मदद मिलती है?



ऐसी भक्ति का क्या फायदा?

अगर भक्ति करते रहे परन्तु फिर भी क्रोध, वैर-द्वेष, [illegible], [illegible], लोभ, मोह और विकारों से छुटकारा न पाया तो क्या फायदा? अगर ज्ञान सागर भगवान् के अवतरित होने पर भी उनसे ज्ञान न लेकर भक्ति ही करते रहे तो क्या फायदा? अब यथार्थ भक्ति का फल – ज्ञान देने के लिए भगवान् स्वयं आये हैं, तो उन द्वारा ज्ञान और योग [illegible] पावन बनने का पुरुषार्थ न किया तो भी क्या फायदा?

मनुष्यात्माओं के ८४ जन्मों की अथवा उत्थान और पतन की कहानी

मनुष्यात्मा ८४ लाख योनियाँ नहीं लेती

ब्रह्माकुमारी—मैंने आपको सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग और सगमयुग का, अर्थात् सारे कल्प का इतिहास सुनाया है। सारे कल्प मे मनुष्यात्मा ८४ जन्म मनुष्य-योनि मे ही लेती है, वह ८४ लाख योनियो मे नही जाती। मनुष्यात्मा पशु-पक्ष्यादि योनियो मे जन्म नही लेती। अत यह इतिहास मनुष्य-योनि में ही मनुष्यात्मा के पतन और उत्थान का इतिहास है।

जिज्ञासु—बहन जी, यह तो आपने नई बात बताई है? आज तक तो हम यही सुनते और मानते आये हैं कि ८४ लाख योनियाँ भोगने के बाद ही कही आत्मा को मनुष्य चोला मिलता है, इसलिए मनुष्य-जन्म दुर्लभ अथवा हीरे-जैसा अनमोल माना गया है। बहन जी, प्रचलित मान्यता तो यह है कि **पशु योनी आत्मा के लिए भोग-योनि है।**

ब्रह्माकुमारी—अगर पशु-पक्षी आदि योनियाँ ही आत्मा के लिए भोग-योनियाँ हैं तो ८४ लाख योनियाँ भोगने के बाद मनुष्य-योनि मे तो मनुष्य को दु ख न भोगना पडता, बल्कि इस चोले मे तो उसे केवल सुख ही मिलता। परन्तु हम देखते है कि मनुष्यात्मा दु ख भी भोगती है और सुख भी। इसलिए यह मान्यता निराधार है कि आत्मा को दु ख भोगने के लिए पशु-पक्षी आदि योनियो मे जाना पडता है।

मनुष्य-योनि में भी अनेक दु.ख हैं; मनुष्यात्मा को दु:ख भोगने के लिए पशु-योनि में नहीं जाना पडता

आप देखते हैं कि मनुष्य-योनि मे जितने प्रकार के दु ख होते है उतने तो शु-योनि मे शायद होते भी न होगे। उदाहरण के तौर पर सरकार के बढते हुए सों और बढ़ती हुई महँगाई की चिन्ता, रस्म-रिवाज के खर्च का बोझ, डे-लत्ते, भोजन, वर्त्तन और शादी-शिक्षा के लिए धन इकट्ठा करने की फिक्र ष्य को ही लगी रहती है। पशु-पक्षी आदि इन चिन्ताओ से बचे हुए है। उन्हें

मान-अपमान, वेश-भूषा, मकान-दुकान, चारपाई-चादर और दहेज-दासी आदि की कोई चिन्ता नहीं; न उनके यहाँ मुकदमेबाजी है, न इलैक्शन का चक्कर, न उन्हें परीक्षा की चिन्ता होती है, न पुलिस का डर। अतः मनुष्य-योनि में ही अनेकानेक प्रकार की व्यवस्थाएँ, वेदनाएँ, चिन्ताएँ, चेष्टाएं, आवश्यकताएँ, कामनाएँ, विकल्प, विचार, वासनाएँ, निराशाएँ इत्यादि होती हैं जिनसे कि मनुष्य का जीवन चिंतित रहता है। इनके अतिरिक्त, मनुष्य को प्रकृति द्वारा तथा अन्य जीवों द्वारा, जैसे कि सर्प आदि-आदि द्वारा भी दुःख होता है। तो जबकि हम देख रहे हैं कि मनुष्यात्माएं मनुष्य-योनि में भी अनेक प्रकार के दुःख तथा अशान्ति भोग रही हैं तो दण्ड के लिए उनका योनि-परिवर्तन क्यों माना जाय?

इसके विपरीत, हम यह देखते हैं कि बहुत से पशु-पक्षी कई मनुष्यों से भी अधिक सुखी हैं। उदाहरण के तौर पर दौड़ के घोड़ों (Race Horses) या पालतू कुत्तों पर लोग बहुत धन खर्च करते हैं। अमीरों के कुत्ते कारों में घूमते हैं और डबलरोटी खाते तथा दूध पीते हैं। परन्तु, आज के संसार में करोड़ों मनुष्य ऐसे हैं जो कि सड़कों पर भूख से व्याकुल बैठे रहते हैं या रोटी के टुकड़े के लिए दर-दर माँगते हैं और मनुष्य उन्हें कुत्तों से भी बुरी तरह डांट-डपटकर, धक्का देकर, धमका कर या तिरस्कार करके हटा देते हैं! दौड़ के घोड़ों को सिखाने वाले, उनकी देख-भाल करने वाले तथा उनके डॉक्टर आदि भी होते हैं और एक घोड़े की इतनी कीमत होती है जितनी कि मनुष्य की भी नहीं होती। एक घोड़े को पालने, उसकी देखभाल करने, और सेवा करने के लिए कई आदमी नौकरी करते हैं। परन्तु कई मनुष्य ऐसे भी होते हैं जिन्हें दवाई या दूध भी नसीब नहीं होता। अतः स्पष्ट है कि मनुष्य-आत्मा मनुष्य-योनि में सुख-दुःख भोगती है, आत्मा के लिए योनि-परिवर्तन की कल्पना मिथ्या है।

दूसरी युक्ति

फिर हम यह भी देखते हैं कि मनुष्य-योनि में दुःख भोगने की सम्भावना भी अधिक होती है क्योंकि मनुष्य पशुओं की निस्बत अधिक संवेदनशील (Sensitive) होते हैं। उदाहरण के तौर पर एक मनुष्य भरी सभा में अपने बारे में दो अपमान-जनक शब्द सुनकर भी इतना दुःखी हो जाता है कि उसके हृदय की गति रुक जाती है और एक गधे को आठ डण्डे लगाये जायें तो भी वह ढीठ होकर खड़ा रहता है। स्पष्ट है मनुष्यात्मा को दुःख भोगने के लिए दूसरी योनियों में जाने की आवश्यकता ही नहीं है बल्कि अधिक बुद्धिमान तथा संवेदनशील (Sensitive)

मनुष्यात्माओं के ८४ जन्मों की अथवा उत्थान और पतन की कहानी

मनुष्यात्मा ८४ लाख योनियाँ नहीं लेती

ब्रह्माकुमारी—मैंने आपको सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग और संगमयुग का, अर्थात् सारे कल्प का इतिहास सुनाया है। सारे कल्प में मनुष्यात्मा ८४ जन्म **मनुष्य-योनि** में ही लेती है, वह ८४ लाख योनियो में नहीं जाती। मनुष्यात्मा पशु-पक्ष्यादि योनियों में जन्म नहीं लेती। अत: यह इतिहास मनुष्य-योनि में ही मनुष्यात्मा के पतन और उत्थान का इतिहास है।

जिज्ञासु—बहन जी, यह तो आपने नई बात बताई है? आज तक तो हम यही सुनते और मानते आये हैं कि ८४ लाख योनियाँ भोगने के बाद ही कहीं आत्मा को मनुष्य चोला मिलता है, इसलिए मनुष्य-जन्म दुर्लभ अथवा हीरे-जैसा अनमोल माना गया है। बहन जी, प्रचलित मान्यता तो यह है कि **पशु योनी आत्मा के लिए भोग-योनि है।**

ब्रह्माकुमारी—अगर पशु-पक्षी आदि योनियाँ ही आत्मा के लिए भोग-योनियाँ हैं तो ८४ लाख योनियाँ भोगने के बाद मनुष्य-योनि में तो मनुष्य को दु:ख न भोगना पड़ता, बल्कि इस चोले में तो उसे केवल सुख ही मिलता। परन्तु हम देखते हैं कि मनुष्यात्मा दु:ख भी भोगती है और सुख भी। इसलिए यह मान्यता निराधार है कि आत्मा को दु:ख भोगने के लिए पशु-पक्षी आदि योनियो मे जाना पडता है।

मनुष्य-योनि में भी अनेक दु:ख हैं; मनुष्यात्मा को दु:ख भोगने के लिए पशु-योनि में नहीं जाना पड़ता

आप देखते हैं कि मनुष्य-योनि मे जितने प्रकार के दु:ख होते है, उतने तो पशु-योनि में शायद होते भी न होगे। उदाहरण के तौर पर, सरकार के बढ़ते हुए **टैक्सों और बढ़ती हुई महँगाई की चिन्ता, रस्म-रिवाज़ के खर्च का बोझ,** कपड़े-लत्ते, भोजन, बर्त्तन और शादी-शिक्षा के लिए **धन इकट्ठा करने की फिक्र** मनुष्य को ही लगी रहती है। पशु-पक्षी आदि इन चिन्ताओं मे बचे हुए हैं। उन्हें

होने के कारण मनुष्य-योनि में थोड़ी-सी बात में भी मनुष्य अधिक दुःख भोगता है।

जिज्ञासु—बहन जी, पशु-पक्षी आदि जो योनियाँ हैं, उनमें मनुष्य-योनि की अपेक्षा कम कर्मेन्द्रियाँ होती हैं और उनमें बुद्धि भी कम होती है। उदाहरण के तौर पर बैल को बोलने की इन्द्रिय प्राप्त नहीं है और गधे को अल्प बुद्धि प्राप्त होती है। इस बात को देखकर लोग मानते हैं कि मनुष्य-आत्मा को बुरे कर्म के दण्डस्वरूप उसे कोई-न-कोई ऐसी निकृष्ट योनि ही मिलनी है।

(३) मनुष्य-योनि में भी लूले-लंगड़े और अंधे हैं दण्ड के लिए मनुष्यात्मा का पशु-योनि में जन्म नहीं होता

ब्रह्माकुमारी—परन्तु आप देखते हैं कि मनुष्यों में से भी कई व्यक्ति कम इन्द्रियों वाले होते हैं, जैसे कि **अंधे, लंगड़े, गूंगे, बहरे** आदि। इस प्रकार, मनुष्य-योनि में भी टूटी-फूटी या कम इन्द्रियों वाले व्यक्ति हम देखते हैं तो योनि-परिवर्तन क्यों माने? इसके अतिरिक्त, अगर मनुष्य में कर्मेन्द्रियाँ अधिक हैं तो आप देखिये कि वह **इन्द्रिय-लोलुप** और विषयासक्त अधिक है। अधिक इन्द्रियों वाला मनुष्य आज पशु से अधिक विकारी है।

जिज्ञासु—बहन जी, लोग कहते है कि जैसे सरकार दण्ड के अतिरिक्त अपराधी के **सुधार** के विचार से भी उसे जेल में बन्द कर देती है ताकि बन्दी होने से उसकी अपराध-वृत्ति का प्रयोग न हो सकेगा और धीरे-धीरे उसकी यह वृत्ति ढीली हो जायेगी और वह बुराई छोड़ देगा वैसे ही मनुष्यात्मा की दूषित वृत्तियों को सुधारने के लिए कुदरत की ओर से योनि-परिवर्तन का नियम है।

(४) सुधारने के लिए भी मनुष्यात्मा का पशु-योनि में जन्म नहीं होता

ब्रह्माकुमारी—जेल में जाकर तो अपराधी अन्य अपराधियों के संग में और भी अधिक बुरा हो जाता है, वह सुधरता थोड़े ही है। इसलिए ही तो अपराधी के मित्र-सम्बधी शुरू से बहुत कोशिश करते हैं कि किसी प्रकार उसे जेल की सजा न मिले ताकि वह पक्का अपराधी न बन जाय। मनुष्य का सुधार तो शिक्षा से होता है, न कि जेल में; इस बात को तो आज सरकार भी मानती है।

एक मिनट के लिए, उदाहरण के तौर पर आपकी बात मान भी ली जाये कि चोरी करने के संस्कार वाली आत्मा का अगला जन्म बिल्ली की योनि में होता है परन्तु आप सोचिये कि बिल्ली भी तो चोरी करके दूध पीती है, तब सुधार क्या हुआ? अच्छा मान लीजिए कि चोर की आत्मा बिल्ली की योनि में जन्म नहीं लेती.

शेर की योनि में जन्म लेती है, जिसमें उसे चोरी न करनी पड़े। तब तो और भी बुरी बात है क्योंकि चोरी का संस्कार पहले था, दूसरे पर हमला करने और हिंसा करने तथा मनुष्य को मार कर खाने का संस्कार अब और हो जायेगा! आप कहेंगे कि शेर की योनि में भी नहीं, कबूतर की योनि में पुनर्जन्म होता है। परन्तु यह तो बताइये कि चोर तो चालाक होता है और सिपाही को देखने पर भाग खड़ा होता है और सामना होने पर लड़कर भी छुड़ाने की कोशिश करता है परन्तु कबूतर बड़ा भोला होता है, वह तो बिल्ली के आने पर डर के मारे आँखें बन्द कर लेता है। तब भला उस चोर में, शरीर छोड़ते ही इतना भोलापन कहाँ से आ गया? दूसरे यह सुधार तो न हुआ क्योंकि चोरी का संस्कार अब और ही आ गया। आप कहेंगे कि मुझे नहीं मालूम कि चोर किस योनि में जन्म लेगा; तो फिर भला आपको यह कैसे मालूम है कि चोर की योनि-परिवर्तन होती है?

पाँचवीं युक्ति

जिज्ञासु—बहन जी, किसी के पास भी यह तो प्रमाण है ही नहीं कि फलाँ आत्मा फलाँ योनि में गई परन्तु एक बात तो है कि अगर मनुष्य को यह मालूम रहे कि बुरे कर्मों के फलस्वरूप कोई निकृष्ट योनि मिलेगी, गधा अथवा दर-दर का कुत्ता बनना पड़ेगा तब वह बुरे कर्मों से बचने की कोशिश करता है।

ब्रह्मा कुमारी—इससे अधिक तो मनुष्य, मनुष्य-योनि में ही दुःखी व्यक्तियों को देखकर अच्छा बनने तथा बुराई से बचने की शिक्षा ले सकता है। जबकि मनुष्य-योनि में अपाहिज, अर्द्धांग वाले, लकवे वाले, अंधे, दोनों टाँगों से लंगड़े, कोढ़ी, गूंगे, अतिनिर्धन, पागल और बुद्धिहीन मनुष्य देखे जाते हैं, तो विचारवान् मनुष्य इनको देखकर भी बुराई से बचने की प्रेरणा ले सकता है। मनुष्य-योनि में तो बुरे कर्मों का फल वह देखता ही है; आत्मा दण्ड भोगने के लिए पशु-योनि में गयी या न गयी—इसे तो वह देखता भी नहीं। तब जिस बात को वह नहीं देखता, तो उसमें अधिक संशय हो सकता है। अतः मनुष्य को बुराई से बचने के लिए उस आत्मा को दूसरी योनियों में पुनर्जन्म लेने का सिद्धांत बताना ज़रूरी नहीं है। सुधार के लिए तो मनुष्य को यह ज्ञान देने की आवश्यकता है कि बुरे कर्मों का फल अटल रूप से उसे (मनुष्य-योनि में) दुःख के रूप में मिलेगा ही, इसलिए उसे सावधान रहना चाहिए।

जिज्ञासु—आपने बताया था कि सभी आत्माएँ ज्योति-बिन्दु अथवा अणु-रूप हैं। तब आत्मा देह छोड़कर छोटे से छोटे प्राणी में भी जा तो सकती है। तब क्या कारण है कि आत्मा इतनी छोटी नहीं आती?

(६) जैसा बीज वैसा फल–जिस योनि की आत्मा उसी योनि में ही पुनर्जन्म

ब्रह्माकुमारी–पीपल और बरगद का बीज लगभग एक ही माप या आकार वाला होता है, तब क्यों नहीं पीपल के बीज से बरगद पैदा हो जाता? स्पष्ट है कि माप या आकार का प्रश्न नहीं है। बात तो यह है कि दोनों बीजों में सम्भावनाएँ या योजनाएँ अलग-अलग हैं। दोनों की जाति (Species) अलग-अलग है। इसलिए "जैसा बीज वैसा वृक्ष अथवा वैसा फल" होता है। आम की गुठली से मिर्च पैदा नहीं हो सकती। ठीक इसी प्रकार, हरेक योनि की भी आत्माएँ अलग-अलग हैं। मनुष्य-योनि की आत्माएँ पशु-योनि में या पक्षी-योनि में नहीं जा सकतीं। आपको बताया था कि मन-बुद्धि और संस्कार आत्मा से अलग नहीं हैं बल्कि स्वयं आत्मा ही में उसके सारे पार्ट की सम्भावनाएँ या संस्कार भरे हुए हैं। अतः मनुष्यात्मा ही अपने **मौलिक स्वभाव में** अन्य योनियों की आत्मा से अलग है।

मनुष्यात्मा पशु से बुरी हो सकती है परन्तु वह पशु-योनि में नहीं जाती

मनुष्यात्मा पशुओं से भी अधिक कामी, क्रोधी और बुरी हो सकती है, बन्दर से भी अधिक विकारी हो सकती है, वह शेर से भी अधिक हिंसक बन सकती है, जैसे कि आज मनुष्य बना हुआ है **परन्तु वह इन योनियों में नहीं जाता क्योंकि मनुष्य-योनि की आत्माएँ ही अलग हैं। मनुष्य विकारों के कारण असुर भी बन सकता है और पवित्र बनकर देवता भी बनता है परन्तु उसका अन्य योनियों में पुनर्जन्म नहीं होता।**

सातवीं युक्ति

जिज्ञासु–भक्त लोग कहते हैं कि अन्त के समय मनुष्य की जैसी वृत्ति होती है वैसी ही उसकी **गति** होती है। कोई स्त्री को याद करता है तो वह शूकर-कूकर की योनि में जाता है।

ब्रह्माकुमारी–परन्तु **भगवान्** कहते हैं कि अन्त के समय मनुष्य की जैसी वृत्ति या स्मृति होती है, वैसी **वासना** तो वह साथ ले जाता है परन्तु वह जन्म मनुष्य-योनि ही में लेता है। उदाहरण के तौर पर किसी व्यक्ति में 'काम' वासना हो तो वह कुत्ते के रूप में जन्म नहीं लेता, हाँ, दूसरे जन्म में मनुष्य चोला लेने पर भी उसमें काम-वासना प्रधान होती है। ऐसा तो हम इस संसार में देखते भी हैं कि किसी में एक विकार प्रधान है तो किसी में दूसरा।

बुरा कर्म करने वाले को अगले जन्म में पशु-जैसी अक्ल मिलती है, शक्ल नहीं

अतः वास्तविकता यह है कि मनुष्यात्मा के संस्कारों, कर्मों या दूसरी आदतों के परिणामस्वरूप उसको पशु-जैसी शक्ल वाली देह नहीं मिलती, पशु-जैसी अक्ल मिलती है। उसको पशु-जैसा तन नहीं मिलता, पशु-जैसा उसका मन होता है, उसे पशु-जैसी प्रकृति नहीं मिलती बल्कि उसकी प्रवृत्ति, वृत्ति, बुद्धि, दृष्टि पशु-जैसी हो सकती है। उसके कर्मों और संस्कारों के परिणामस्वरूप उसका भाग्य-परिवर्तन, प्रारब्ध-परिवर्तन और स्वभाव-परिवर्तन हो जाता है परन्तु योनि-परिवर्तन नहीं होता। वह मनुष्य की देह छोड़कर बन्दर की देह नहीं लेता, परन्तु मानव-देह में जन्म लेकर बन्दर से भी बदतर (निकृष्ट) होता है।

(८) अगर मनुष्यात्माएँ पशु-योनियों में जन्म लेती तो जनसंख्या में वृद्धि न होती

आप जानते हैं कि आज मनुष्य-गणना बहुत ही तीव्र गति से बढ़ रही है। अब आप विचार कीजिए कि अगर मनुष्यात्माएँ अपने बुरे कर्मों या संस्कारों के कारण पशु पक्षी आदि योनियों में जन्म लेती होतीं तब जनसंख्या इस प्रकार न बढ़ती जाती बल्कि बहुत ही कम होती क्योंकि इस कलियुग में सभी अथवा अधिकतर आत्माएँ तो बुरे संस्कारों और विकारों वाली तथा बुरे कर्म करने वाली ही तो हैं। अतः स्पष्ट है कि बुरे संस्कारों तथा दुष्ट कर्मों वाली होने पर भी मनुष्यात्माओं का पुनर्जन्म मनुष्य-योनि में ही हो रहा है यद्यपि वह उत्तरोत्तर अधिक विकारी तथा दुःखी होती जा रही है।

(९) समाचार-पत्रों में मनुष्य-रूप में ही पुनर्जन्म के समाचार

आपने समाचार-पत्रों में कई बार ऐसा समाचार तो पढ़ा ही होगा कि एक लड़की पहले अमुक नगर में रहती थी और पहले उसके माता-पिता ये थे। अभी भी किसी ने यह तो नहीं बताया कि "पिछले जन्म में मैं लोमड़ी थी और पहले जंगल में रहती थी?" समाचार-पत्रों में ऐसे समाचार भी छपे हैं कि अमुक मनुष्य कहता है कि—"मैं पूर्व-जन्म में अमुक स्त्री का पति था। मैंने अपनी स्त्री को कत्ल किया था।" आदि-आदि। अब विचार कीजिये कि अगर मनुष्य अच्छे कर्मों से मनुष्य-योनि में जन्म ले सकता है तो फिर बुरे कर्म करने वाले का पशु-योनि में पुनर्जन्म किस आधार पर माना जाये?

खैर, हमने तो आपको प्रसन्नता की बात बताई है कि आप पशु-पक्षी आदि योनि में जन्म नहीं लेंगे, आपको जो चाहिए सो मानो। ज्ञान द्वारा ही मनुष्य की खुशी बढ़नी चाहिए। यह क्या ज्ञान हुआ कि "हम पशु-पक्षी की योनि में जन्म लेंगे"? यह तो मिथ्या भय हुआ!

जिज्ञासु–बहन जी, मुझे बात तो जँचती है और अच्छी भी लगती है तब भला मैं क्यों मानूँगा कि मनुष्यात्मा का पशु-योनि मे पुनर्जन्म होता है? मनुष्य बनने की खुशी होना तो स्वाभाविक है। परन्तु मन मे यह विचार उठता है कि अगर पशुओं की आत्माएँ सदा पशु-योनि मे रहेगी तो फिर उन्हे सुख कैसे मिलेगा, वे मुक्ति को कैसे प्राप्त करेंगी?

ब्रह्माकुमारी–मनुष्य अच्छा होता है तो सारी सृष्टि अच्छी होती है। मनुष्य की गिरावट होती है तो सभी मे गिरावट आ जाती है। सतयुग और त्रेतायुग में मनुष्य पूर्णतः पवित्र होता है। अतः उस समय यह सृष्टि स्वर्ग होती है। तब पशु-पक्षी इत्यादि भी पूर्णतः सुखी होते हैं। आजकल के मनुष्य से तो वे लाख दर्जे अधिक सुखी होते हैं। वह सृष्टि **'स्वर्ग'** जो ठहरी। अतः पशुओं की चिन्ता न करके आप अपनी चिन्ता करो। आप स्वय निर्विकार और पावन बनो तो आपके और अन्य सभी पावन बनने वालो के प्रभाव से इन सभी पशुओं, पक्षियों इत्यादि मे भी परिवर्तन आयेगा और इन्हे भी सुख मिलेगा, और जब सृष्टि का महाविनाश होगा तब सभी मनुष्यात्माओं को जब मुक्ति मिलेगी तब इन पशु-पक्षिओं को भी मुक्ति मिलेगी ही। इसकी फिक्र न करके आप अपने ८४ जन्मो की कहानी को जानकर आप तो पहले मुक्ति के लिए और मानव से देवता अथवा नर से श्री नारायण बनने के लिए पुरुषार्थ करो। पहले अपने ऊपर तो दया करो! खैरात तो घर से शुरू होनी चाहिए?

जिज्ञासु–हाँ, ठीक है बहन जी, मैं तो वैसे भी अब इस रहस्य को समझ और मान चुका हूँ कि–"पुनर्जन्म होता है परन्तु आत्मा का योनि-परिवर्तन नहीं होता।" अब आप मुझे मनुष्यात्मा के ८४ जन्मो की कहानी बताइये।

मनुष्यात्मा के ८४ जन्मों की कहानी

ब्रह्माकुमारी–यह सीढी का चित्र आप देखिये (इसे पृष्ठ न. ६० ख पर प्रकाशित किया गया है), त्रिकालदर्शी, जन्म-मरण से न्यारे परमपिता परमात्मा ने हमें ८४ जन्मों की जो कहानी सुनाई है, उसी को यहाँ चित्रित किया गया है। इसमें सबसे पहले सतयुग दिखाया गया है। सतयुगी सृष्टि **'स्वर्ग'** या वैकुण्ठ है। इसमें श्री नारायण और उनके वंश का राज्य होता है। इस युग में औसत आयु १५० वर्ष होती

है क्योंकि वहाँ न कोई चिन्ता होती है, न रोग, न शोक, न कोई विकार बल्कि सतोगुणी प्रकृति और शान्ति होती है। अतः १२५० वर्ष के इस युग में श्री नारायण की आत्मा के कुल ८ जन्म सूर्यवंश में पूज्य राजा, पूज्य रानी या राज्य-वंश के सदस्य के रूप में होते हैं। इस युग में वह १६ कला सम्पूर्ण, सम्पूर्ण निर्विकारी, सर्वगुण सम्पन्न और दैवी मर्यादा में पुरुषोत्तम होते हैं और उन्हें 'देवता वर्ण' का माना जाता है।

सतयुग में ८ जन्म के बाद त्रेता में १२ जन्म

त्रेतायुग में औसत आयु लगभग १२५ या १०० वर्ष होती है। अतः १२५० वर्ष के इस युग में सतयुगी श्री नारायण की आत्मा के लगभग १२ जन्म चन्द्रवंश में राजा-रानी या राज्यकुल के सदस्य के रूप में होते हैं। सतयुग और त्रेतायुग में कुल मिलाकर २१ जन्म सम्पूर्ण-सुख के होते हैं। त्रेतायुग में भी सतोगुण होता है और सभी १४ कला सम्पूर्ण निर्विकारी होते हैं। त्रेतायुग के प्रारम्भ में श्री सीता और श्री राम का राज्य होता है। 'राम राज्य' तो आज तक भी प्रसिद्ध है। उस राज्य में सभी सुखी होते हैं। त्रेतायुग के लोगों का वर्ण क्षत्रिय वर्ण है क्योंकि वे दो कलाएँ कम शोभित हैं।

द्वापरयुग में २१ जन्म

फिर द्वापरयुग में वे देह-अभिमानी और विकारी हो जाते हैं और इस कारण वे देव पद या पूज्य पद से गिर कर पुजारी मनुष्य की अवस्था को प्राप्त होते हैं। अब वे रजोप्रधान स्थिति वाले होते हैं इसलिए उनके वर्ण को 'वैश्य-वर्ण' कहा गया है। १२५० वर्ष के द्वापरयुग में वे कुल २१ जन्म भक्त-शिरोमणी राजा-रानी अथवा उच्च प्रजा के रूप में लेते हैं। सबसे पहले वे निराकार शिव की पूजा प्रारम्भ करते हैं। (पृष्ठ न. ६० ख पर) चित्र में सोमनाथ का मन्दिर दिखाया गया है, और वहाँ राजा के रूप में उन्हें शिव लिङ्ग की पूजा करते हुये दिखाया गया है। धीरे-धीरे वे अपने ही पूर्व रूप अर्थात् श्री नारायण रूप की भी पूजा-भक्ति करने लगते हैं। फिर, अन्य देवी-देवताओं की भी आराधना व पूजा शुरू होती है और शास्त्र बनने लगते हैं तथा यज्ञ भी होने लगते हैं। इस प्रकार भक्ति भी अव्यभिचारी से व्यभिचारी हो जाती है अर्थात् एक परमात्मा की भक्ति की बजाए अन्य अनेकों की भी भक्ति होने लगती है।

कलियुग में ४२ जन्म, पुरुषोत्तम संगमयुग में एक जन्म

इसके बाद कलियुग आता है। (पृष्ठ नं. ६० ख पर) चित्र में दिखाया गया है कि अब तो रावण अर्थात् माया (पाँच विकारों) का प्रभाव सृष्टि पर बढ़ने लगता है। कलियुग में तमोगुण की प्रधानता होती है। अतः सभी नर-नारी शूद्र वर्ण के होते हैं। इस युग में तथा इस वर्ण में वे पुजारी राजा, रानी अथवा प्रजा के रूप में कुल ४२ जन्म लेते हैं। इस युग में वृक्ष, सूर्य, जल, अग्नि आदि तत्त्वों की पूजा होने लगती है। परमपिता परमात्मा से योग-भ्रष्ट होने के कारण, भारत जो कि पहले सम्पूर्ण सुख-शान्ति-सम्पन्न अर्थात् स्वर्ग था, अब कंगाल, मोहताज और भ्रष्टाचारी अर्थात् नरक बन जाता है। आज यहाँ शान्ति के लिए जगह-जगह साधु-सम्मेलन होते हैं, परन्तु फिर भी शान्ति नहीं है। सतयुगी दैवी मर्यादा के विपरीत अब भारत अपने लिए दूसरे से धन और अन्न भी माँगता है। प्रजा पर प्रजा का राज्य होता है, जिनमें कि अनुशासन-हीनता, मत-भेद, धर्म-भेद, प्रान्त-भेद, भाषा-भेद आदि-आदि के आधार पर आये दिन दंगे होते रहते हैं। मन्त्रीगण गोष्ठियाँ या सम्मेलन करते हैं परन्तु जनता में भ्रष्टाचार तथा फूट बढ़ेती जाती है क्योंकि वे एक-दूसरे को 'आत्मा-आत्मा, भाई-भाई' की दृष्टि से नहीं देखते और परमपिता परमात्मा से विपरीत-बुद्धि होते हैं।

इस प्रकार, सतयुगी श्री नारायण कलियुग के अन्त तक जब ८४ जन्म ले चुकते हैं और साधारण तथा वृद्ध तन में वानप्रस्थ अवस्था में होते हैं तब उसके तन में परमपिता परमात्मा शिव प्रवेश करते हैं और भारत को फिर पतित से पावन बनाने के लिए और कलियुग का अन्त करके सतयुग लाने के लिए तथा मानुष को देवता बनाने के लिए गीता-ज्ञान देते हैं। उस ज्ञान द्वारा संगमयुग में उसका 'मरजीवा जन्म' होता है। वह उस मनुष्य को 'प्रजापिता ब्रह्मा' नाम देते हैं। वह प्रजापिता ब्रह्मा परमात्मा शिव से ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग की शिक्षा प्राप्त करके फिर अगले जन्म में, अर्थात् सतयुग में, ५००० वर्ष पहले की तरह श्री नारायण पद को प्राप्त करता है और यही भारत फिर कलियुगी से सतयुगी, पतित से पावन, आसुरी से दैवी, दुःखी से सुखी अर्थात् नरक से स्वर्ग बन जाता है। अब ऐसा ही समय चल रहा है। भारत फिर नरक से स्वर्ग बन रहा है।

(पृष्ठ नं. ६० ख पर) चित्र में कलियुग के अन्त में दिखाया गया है कि परमपिता परमात्मा जिन्हें ज्ञान देते हैं वे योग-तपस्या कर रहे है और शुद्र से ब्राह्मण बनकर ब्रह्मचर्य व्रत का आजीवन पालन करते हुए देव-पद प्राप्त करने का पुरुषार्थ कर

[illegible]। इसके फलस्वरूप वे पवित्र बनते हैं और परमपिता परमात्मा योग [illegible] [illegible] द्वारा उन्हें वापस परमधाम अथवा मुक्तिधाम ले जाते हैं, जहाँ से कि वे फिर अपने-अपने समय पर सतयुगी सृष्टि में आते हैं। कलियुग का अन्त होने पर [illegible] भारत में गृह-युद्धों तथा प्राकृतिक आपदाओं आदि द्वारा महाविनाश होता है और इस प्रकार, अधर्म और आसुरी सम्प्रदाय की स्थापना होने के बाद [illegible] है।

'सत्यनारायण की सच्ची कथा और अमर कथा'

ये ही मनुष्यात्माओं के उत्थान और पतन की अविनाशी [illegible] कथा' है जो कि अमरनाथ शिव कलियुगी मृत्यु-लोक को [illegible] बनाने के लिए सुनाते हैं। यही 'सत्यनारायण की सच्ची कथा' [illegible] पता चलता है कि सत्य-स्वरूप परमपिता परमात्मा [illegible] ब्राह्मण (प्रजापिता ब्रह्मा) के तन में आकर भारत को [illegible] और नर को फिर से श्री नारायण कैसे बनाते हैं? [illegible] सत्यनारायण की जो कथा करते हैं उसमें सत्यनारायण [illegible] है, बल्कि वह तो इस कथा का केवल माहात्म्य मात्र है। [illegible] मालूम ही नहीं कि श्री नारायण ने भारत में कब राज्य किया [illegible] त्रेता, द्वापर और कलियुग में कितने जन्म किस-किस रूप में [illegible] अब वह कहाँ है? परमपिता परमात्मा जिस बूढ़े ब्राह्मण के तन में आते हैं उसका क्या परिचय है? वे ये भी नहीं जानते कि नर को श्री नारायण बनाने के लिए सत्यनारायण की सच्ची कथा सुनाने वाले परमपिता परमात्मा ने तो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कराया था किन्तु आज लोग वह सच्चा व्रत तो रखते नहीं, और यों ही सत्यनारायण व्रत की कथा कर लेते हैं। आज सत्यनारायण को न पहचानने के कारण ही सबकी जीवन रूपी नाव अथवा बेड़ा विषय-सागर में डूबा हुआ है। अब फिर उस व्रत को करने तथा कथा सुनने से यह जीवन रूपी बेड़ा पार हो सकता है और जीवन-नाव में धन तथा [illegible] प्राप्त हो सकता है।

जिज्ञासु—बहन जी, मैं स्वयं भी कई बार सोचा करता था कि हम जो 'सत्यनारायण-व्रत' की कथा करते हैं उसमें तो केवल व्रत की महिमा, कथा और प्रसाद का ही माहात्म्य है [illegible] कौनसी है जिसका इतना माहात्म्य है, वह कथा कौनसी है [illegible] की कथा के सुनने और सुनाने वालों [illegible] है। [illegible]

ब्राह्मण का परिचय दिया था जिसके वेश में परमपिता परमात्मा आये थे। सचमुच सत्यनारायण की यह सच्ची-कथा सुनकर मुझे बहुत ही खुशी हुई है।

सच्चा व्रत और सच्चा प्रसाद

ब्रह्माकुमारी—कथा को केवल सुनने की खुशी से तो थोड़ा-सा ही लाभ हुआ। अब पूरा लाभ तो तब होगा जब आप स्वयं ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करोगे, स्वयं भी ज्ञान रूप प्रसाद लोगे, दूसरों को बाँटोगे, स्वयं भी नित्य यह कथा सुनोगे और दूसरों को भी सुनाओगे। इतना ही नहीं, बल्कि स्वयं भी अब योग द्वारा नर से श्री नारायण बनने का पुरुषार्थ करोगे क्योंकि अब तो सभी के ८४वें जन्म के अन्त का भी अन्त आ पहुँचा है। इसलिए अब जीते-जी मरकर स्वर्गवासी बनने का पुरुषार्थ करो और उसके लिए सतोगुणी बनो, दिव्यगुण धारण करो और मन्सा, वाचा और कर्मणा पवित्र बनो।

जिज्ञासु—बहन जी, अवश्य पुरुषार्थ करूँगा। एक बात तो बताइये। 'जीते-जी मरने' का क्या अर्थ है और किसी मनुष्य के मरने पर यह जो कहा जाता है कि—'वह स्वर्ग सिधारा'—क्या ऐसा कहना ठीक है?

क्या मरने के बाद आत्मा स्वर्ग सिधार जाती है?

ब्रह्माकुमारी—अगर मरने के बाद सभी स्वर्ग सिधार जाते तो अब तक स्वर्ग में भी भीड़ हो जाती और वहाँ भी जनसंख्या की वृद्धि के कारण ऐसे ही दुःख होता! हमने आपको बताया है कि सतयुग और त्रेतायुग की सृष्टि में सम्पूर्ण सुख और शान्ति होती है और 'यथा राजा-रानी तथा प्रजा' सभी दैवी-गुण सम्पन्न होते हैं। इसलिए स्वर्ग कोई ऊपर नहीं है बल्कि सतयुगी और त्रेतायुगी सृष्टि ही द्वापर और कलियुगी सृष्टि की तुलना में चारित्रिक एवं सुख की दृष्टि से ऊपर होने के कारण स्वर्ग और वैकुण्ठ है। इसी प्रकार, द्वापरयुगी और कलियुगी सृष्टि ही पतित है और दुःखी है और इसीलिए **'नरक'** है। अब स्पष्ट है कि सतयुग और त्रेतायुग में आत्माएँ जब शरीर छोड़ती हैं तो वे इसी सृष्टि में ही पुनर्जन्म लेती हैं क्योंकि वे पूर्णतः निर्विकारी होती हैं। परन्तु द्वापर और कलियुग में जब आत्माएँ शरीर छोड़ती हैं तो वे इसी सृष्टि में ही पुनर्जन्म लेती हैं क्योंकि यहाँ के लोगों से ही उनका कर्म खाता जुटा होता है, उनकी कुछ वासनायें तथा विकार भी रहे होते हैं और उन्होंने काम आदि विकारों को पूर्णतः जीता नहीं होता और वे सभी दैवी-गुणों से सम्पन्न भी नहीं होतीं। अतः द्वापरयुग और कलियुग में जो मनुष्य शरीर छोड़ता है, उसके लिए यह कहना कि—'वह स्वर्गवासी हुआ (Left for Heavenly Abode)'—गलत है।

वास्तव में ऐसा कहने वाले लोग स्वयं अपने मन में भी समझते हैं कि वह स्वर्गवासी नहीं हुआ परन्तु केवल सम्मान ही के भाव से वे ऐसा कह देते हैं। वरना यदि वे सचमुच ऐसा मानते होते कि वह आत्मा स्वर्ग सिधार गई तो वे उसके लिए दीपक क्यों जगाते, उसके लिए श्राद्ध क्यों करते और उसके मरने पर रोते क्यों? यदि वह स्वर्ग चला गया तब तो खुश होना चाहिए? यदि वह वैकुण्ठवासी हुआ तब उसके लिए यहाँ के (नरक के) पदार्थों से श्राद्ध क्यों किया जाय, जबकि उसे स्वर्ग के अच्छे पदार्थ मिलते होंगे।

जीते-जी मरने का अर्थ क्या है?

अब 'जीते-जी मरने' का क्या अर्थ है? आप देखिये कि जब मनुष्य मर जाता है तो उसके लिए दीपक जलाते हैं ताकि वह कहीं रास्ता न भूल जाय अथवा भटक न जाय। वे जब उसकी अर्थी को ले जाते हैं, तो मरघट से पहले तो अर्थी का मुँह शहर की ओर तथा पाँव श्मशान की ओर होते हैं परन्तु मरघट के निकट पहुँचने पर वे अर्थी को पलटकर उस शव का मुँह श्मशान की तरफ और पाँव शहर की ओर कर देते हैं। अतः 'जीते-जी मरने' का अर्थ है कि प्राणी का अन्त होने से पहले अर्थात् अभी ही, अपना मुँह नगर से मोड़कर श्मशान की ओर कर लेना अर्थात् इस दुनिया को देखते हुए भी न देखना, इसके विषय-विकारों से तथा मोह-ममता से निकलकर अनासक्त भाव को धारण करना और ज्ञान द्वारा आत्मा रूपी दीपक को जगाना। मरने के बाद दूसरों द्वारा जगाये गये मिट्टी के दीपक से भला आत्मा की क्या मार्ग प्रदर्शना होगी? आत्मा के स्वर्ग-आरोहण के मार्ग को प्रकाशित करने वाला तो ज्ञान-दीप ही है जो कि जीते-जी ही जगाया जा सकता है। फिर, आप जानते हैं कि मरने के बाद तो आत्माओं को पिछले जन्म के सम्बंधियों तथा समाचारों की स्मृति नहीं रहती बल्कि वह नये सम्बन्ध जोड़ती और कर्मों का नया खाता खोलती है। अतः जीते-जी मरने का मतलब है कि—अपनी देह को भूलकर, देह के सर्व-सम्बन्धियों से बुद्धि की लगन तोड़कर अपना परमपिता परमात्मा से आत्मिक नाता जोड़ना तथा सच्चा ब्राह्मण बनना। इस प्रकार, जीते-जी मरने से, पुराने संस्कारों को छोड़, दैवी-संस्कार बनाने से ही आप स्वर्गवासी बनेंगे—ऐसा मैंने कहा था।

जब मनुष्य मरने लगता है तो लोग उसके मुख में गंगाजल डालते हैं और उसे गीता सुनाने लगते हैं। परन्तु अब तो सभी का अन्तिम जन्म है। अब तो सारी सृष्टि ही मृत्यु-शैय्या पर है। अतः अब परमपिता परमात्मा जो कि वह स्वयं गीता-ज्ञान

सुना रहे हैं अब उसे सुनो और जो ज्ञान-गंगा वह बहा रहे हैं, वह ज्ञान-जल लो।

जिज्ञासु — हाँ, अवश्य ही नित्य ज्ञानामृत पीकर जीवन को सफल करूँगा और दैवी-गुणों की धारणा भी करूँगा।

ब्रह्माकुमारी — अच्छा, तो आप इन ज्ञान-बिन्दुओं पर मनन कीजियेगा तथा इन प्रश्नों के उत्तर भी लिख लाइयेगा —

प्रश्न

१. मनुष्यात्मा मनुष्य-योनि में ही अपने कर्मों का फल पाती है, कैसे?

२. मनुष्यात्मा सारे कल्प में कुल कितने जन्म लेती है और किन-किन युगों में कितने-कितने जन्म लेती है?

३. सत्य नारायण की सच्ची कथा कौनसी है?

४. फँला-व्यक्ति स्वर्गवासी हुआ — क्या यह कहना यथार्थ है? यदि नहीं तो क्यों?

५. जीते-जी मरने का अर्थ क्या है?

भारतवासियों के धर्म का वास्तविक नाम

और धर्म-शास्त्र का परिचय

ब्रह्माकुमारी—आपने परिचय-प्रपत्र में अपने धर्म का नाम लिखा है—"हिन्दू धर्म।"

जिज्ञासु—जी हां! बहन जी, हम सभी 'हिन्दू' ही तो कहलाते हैं।

ब्रह्माकुमारी—जापान के लोग 'जापानी' कहलाते हैं तो क्या उनके धर्म का नाम हम 'जापानी धर्म मानें'? फ्रांस के लोग 'फ्रांसीसी' कहलाते हैं तो क्या उनके धर्म का नाम हम 'फ्रांसीसी धर्म, मानें? यह तो कोई बात न हुई! सिन्धु नदी को विदेशी लोग हिन्दू या इण्डस (Indus) कहने लगे और उसके आसपास रहने वाले लोगों को हिन्दू या 'इण्डियन्स'। इसका अर्थ यह थोड़े ही है कि हमारे धर्म का नाम भी हमारे देश के ही नाम पर आधारित हो? दूसरे लोग हमारे धर्म को जो नाम दें, क्या वही नाम हम अपना लें या हम स्वयं भी इस धर्म का कोई अन्य वास्तविक नाम जानते और मानते हैं? धर्म का नाम तो प्रायः धर्म-स्थापक के नाम से सम्बन्धित होता है, जैसे कि, बुद्ध ने जो धर्म स्थापित किया उसका नाम 'बौध धर्म' और ईसा या क्राईस्ट ने जो धर्म स्थापित किया उसका नाम 'ईसाई' अथवा क्रिश्चियन धर्म हुआ। या तो धर्म का नाम उस धर्म के किसी मुख्य मन्तव्य अथवा सिद्धान्त से सम्बन्धित होता है, परन्तु देश के नाम से तो धर्म का नाम नहीं लिया जाता।

अच्छा, तो अब आप ही बताइये कि जैसे बौद्ध धर्म बुद्ध ने और ईसाई धर्म ईसा ने स्थापित किया, वैसे ही जिसे आप 'हिन्दू' धर्म कहते हैं, उसकी स्थापना किसने और कब की?

जिज्ञासु—बहन जी, इसके स्थापक के नाम और समय का तो किसी को पता नहीं। लोग कहते हैं कि यह अनादिकाल से चला आ रहा है, परन्तु विवेक कहता है कि आखिर किसी-न-किसी काल में इसकी स्थापना तो अवश्य हुई होगी। लेकिन हमें उसका ज्ञान नहीं।

ब्रह्माकुमारी—देखिए, आज हमारे धर्म के लोगों की क्या हालत हुई है कि वे अपने धर्म के वास्तविक नाम, धर्म-स्थापक के नाम तथा उनकी जीवन-कहानी और स्थापना काल को भी नहीं जानते? अन्य धर्मों के लोग जानते हैं कि उनका धर्म

किसने स्थापित किया, उसकी जीवन-कहानी क्या है और उनका धर्म कब स्थापित हुआ? उदाहरण के तौर पर ईसाई धर्म के लोग जानते हैं कि उनका धर्म ईसा ने आज से १९७४ वर्ष पूर्व स्थापित किया था और ईसा की जीवन-कहानी इस प्रकार है। परन्तु, हमारा धर्म चूँकि सर्व-प्राचीन है, इसलिए हम उसके स्थापक और स्थापना-काल को भूल गये हैं, परन्तु सोचने की बात है कि आखिर किसी ने इसे स्थापित तो अवश्य किया होगा?

जिज्ञासु–यह तो मैं भी जानता हूँ कि इसका कोई स्थापक और स्थापना-काल तो होगा ही, चाहे यह कितना ही प्राचीन क्यों न हो?

भारतवासियों के आदि धर्म का वास्तविक नाम

ब्रह्माकुमारी–तो देखिए, अब परमपिता परमात्मा शिव ने हमें इस सृष्टि-चक्र और सृष्टि रूपी कल्प-वृक्ष का ज्ञान देते हुए समझाया है कि हमारे धर्म का वास्तविक नाम है–'**आदि सनातन देवी-देवता धर्म**'। इसे '**आदि सनातन**' इस कारण से कहते हैं कि यह सतयुग के आदिकाल से चला आया है और इसे '**सनातन**' इसलिए कहते हैं कि कलियुग के अन्त में जब इस धर्म की पूर्णतः ग्लानि होती है तब भगवान् इनकी पुनः स्थापना कर देते हैं और इस प्रकार, सृष्टि का महाविनाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता। इसके नाम के साथ '**देवी-देवता**' शब्द इसलिए जुड़ा हुआ है कि इस धर्म के आदिकाल के लोग अर्थात् सतयुग और त्रेतायुग के लोग देवी-देवता थे। उनका आचार-विचार, आहार-व्यवहार आदि सतोप्रधान था और दिव्यगुणों से युक्त था। ये सारा इतिहास तो मैं पहले आपको बता चुकी हूँ और यह समझा चुकी हूँ कि इस सर्वोत्तम धर्म की स्थापना परमपिता परमात्मा शिव ने प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा, कलियुग के अन्त और सतयुग के आरम्भ के संगम समय की।

जिज्ञासु–जी हाँ! यह तो आपने बताया था, अब मुझे याद आ गया है। परन्तु बहन जी, कुछ लोग कहते हैं कि हमारे धर्म का नाम '**आर्य धर्म**' है और कई लोग इसका नाम '**आदि सनातन धर्म**' भी बताते हैं।

'आदि सनातन' के साथ 'देवी-देवता' शब्द ज़रूरी

ब्रह्माकुमारी–'आदि सनातन' शब्द तो केवल समय को सूचित करता है, इसके साथ 'देवी-देवता' शब्द का होना ज़रूरी है क्योंकि हमारे पूर्वज, जैसे कि श्री लक्ष्मी-श्री नारायण, श्री राधे-श्री कृष्ण, श्री सीता-श्री राम आदि-आदि दैवी

आदि सनातन देवी-देवता धर्म का शास्त्र

हमारा धर्म तो स्वयं भगवान् ने प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा स्थापित किया, तो आप यह बताइये कि **स्वयं भगवान्** के महावाक्य किस शास्त्र में हैं? जिस शास्त्र के वाक्य, 'भगवान् उवाच'—इन शब्दों से शुरू होते होंगे, जिस धर्म-ग्रन्थ का नाम ही सिद्ध करता होगा कि उसमें भगवान् के वचन हैं, वह ही हमारा धर्म-शास्त्र होगा।

अब ऐसा शास्त्र तो **गीता** ही है । गीता का नाम ही 'श्रीमद् **भगवद्गीता**' है जिसका अर्थ होता है '**भगवान् के ज्ञान-गीत**'। इसी शास्त्र में वक्ता के लिए '**भगवान् उवाच**' शब्दों का प्रयोग है। गीता में भगवान् ने भी कहा है कि जब-जब दैवी-सम्पदा-सम्पन्न धर्म की ग्लानि होती है तब-तब मैं अधर्म का विनाश करने तथा **सत् धर्म की स्थापना** करने आता हूँ। परन्तु स्वयं को हिन्दु कहलाने वाले लोगों को आज उस धर्म का नाम पता नहीं है जिसकी स्थापना गीता के भगवान् ने की थी?

जिज्ञासु—परन्तु, गीता में तो श्री कृष्ण भगवान् के वचन हैं?

क्या गीता-ज्ञान के आदि वक्ता देवता श्री कृष्ण थे या भगवान् शिव?

ब्रह्माकुमारी—आपको परमपिता परमात्मा के दिव्य नाम, दिव्य रूप, दिव्य धाम आदि का जो परिचय दिया है, **क्या उस सबको ध्यान में रखकर श्रीकृष्ण को** '**भगवान्**' अथवा '**परमात्मा**' मानेंगे या एक '**देवता**' मानेंगे? आपको तो समझाया गया था कि भगवान् जन्म-मरण में नहीं आते, वह शिशु के रूप में लालन-पालन नहीं लेते और उनके कोई माता-पिता, शिक्षक आदि नहीं होते क्योंकि वह स्वयं ही सबके परमपिता हैं और अभोक्ता और कर्मातीत हैं। परन्तु श्री कृष्ण ने तो जन्म लिया था और उनके माता-पिता तथा शिक्षक भी थे। आपको यह भी बताया गया था कि भगवान् ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर नाम वाले देवताओं के भी रचयिता अर्थात् **त्रिमूर्त्ति** हैं परन्तु श्री कृष्ण तो विष्णु के साकार रूप थे अर्थात् एक **देवता** थे। भगवान् तो प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा आदि सनातन दैवी धर्म की **स्थापना**, शंकर द्वारा अनेक आसुरी धर्मों का **विनाश** और विष्णु द्वारा सतयुगी तथा त्रेतायुगी दैवी **धर्म** वाली सृष्टि का पालन कराते हैं। अतः श्री कृष्ण जो विष्णु के साकार रूप हैं, केवल **पालन** ही के निमित्त हैं न कि **धर्म स्थापना** और अधर्म का विनाश करने के निमित्त। भगवान् तो एक हैं, वह **शरीरधारी** थोड़े ही हैं, वह तो **ज्योतिस्वरूप** हैं **और सभी धर्मों** की आत्माओं के परमपिता हैं, तब क्या श्रीकृष्ण को सभी आत्माओं का परमपिता कहा जा सकता है? क्या भगवान् के कोई स्त्री, लौकिक

बच्चे आदि होते हैं? भगवान् को तो 'अभोक्ता' कहा जाता है, वह तो राज्य-भाग्य अथवा सुख-सम्पत्ति के दाता हैं, तब क्या श्री कृष्ण को अभोक्ता मानेंगे? भगवान् तो कहते हैं कि—"मैं सृष्टि का **बीज रूप** हूँ तो क्या मनुष्य-सृष्टि का बीजरूप श्रीकृष्ण को मानोगे या प्रजापिता ब्रह्मा के तन में अवतरित हुए ज्योति-बिन्दु परमपिता परमात्मा शिव को? फिर भगवान् तो कहते हैं कि—"**मैं अजन्मा हूँ**, परन्तु मेरा जन्म दिव्य है और मेरे कर्त्तव्य दिव्य हैं" और हमने यह भी समझाया था कि 'दिव्य-जन्म' का अर्थ 'परकाय प्रवेश' है। परन्तु श्रीकृष्ण का जन्म परकाय प्रवेश के रूप में तो नहीं था। इन सब बातों को ध्यान में रखने से आप श्री कृष्ण को 'देवता' मानोगे या 'भगवान्' और क्या आप गीता-ज्ञान का दाता भगवान् को अर्थात् शिव को मानोगे या देवता श्री कृष्ण को?

क्या गीता-ज्ञान द्वापरयुग में दिया गया था या पुरुषोत्तम संगमयुग में

जिज्ञासु—बहन जी, यह तो बात ठीक है कि भगवान् एक है और ज्योतिस्वरूप है और त्रिमूर्ति है, देवों का भी देव है और गीता को 'भगवद्गीता' भी कहा गया है। इसलिए मुझे यह बात जँचती तो है कि गीता-ज्ञान परमपिता परमात्मा शिव ने दिया होगा, परन्तु ऐसा क्यों न मान लें कि परमपिता परमात्मा शिव ने श्री कृष्ण के तन में प्रवेश करके द्वापर में यह ज्ञान दिया?

ब्रह्माकुमारी—किञ्चित सोचिये कि अगर भगवान् का दिव्य अवतरण द्वापरयुग के अन्त में हुआ होता और तभी उन्होंने अधर्म का विनाश और दैवी धर्म की स्थापना का कार्य किया होता तब तो द्वापरयुग के बाद सतयुग, धर्मयुग अथवा देवयुग आ जाता। परन्तु, आप जानते हैं कि द्वापरयुग के बाद तो कलियुग, अर्थात् अधर्म का युग आता है। तो क्या आप ऐसा मान सकते हैं कि भगवान् का अवतरण होने और उन द्वारा दैवी सत् धर्म की स्थापना तथा अधर्म या आसुरी धर्म का विनाश होने के बाद **कलियुग** आया अर्थात् पतन का युग आया? तब तो फिर भगवान् के अवतरण और उनके कर्त्तव्य का लाभ ही क्या हुआ और भगवान् की महिमा ही क्या रही? भगवान् तो '**पतित-पावन**' हैं, वह तो [illegible] वाले, दुःख-हर्त्ता और '**सुख-कर्त्ता**' हैं, अतः उनके अवतरण [illegible] सृष्टि में **पवित्रता**, **सुख और शान्ति** [illegible]

बाद सतयुग का आरम्भ होता है। इससे स्पष्ट हुआ कि वह कलियुग के अन्त और सतयुग के आरम्भ के संगम पर प्रकाशित होते हैं।

जिज्ञासु–जी हाँ, याद आया, आपने कहा था कि इस युग को 'कल्याणकारी संगमयुग' अथवा 'पुरुषोत्तम युग' कहा जाता है।

ब्रह्माकुमारी–हाँ! इसी तरह यह भी आप से बताई थी कि भगवान् ईश्वरीय ज्ञान द्वारा नर को श्री नारायण तथा नारी को श्री लक्ष्मी या मानव को देवता बनाते हैं। तो यदि आप श्री कृष्ण को 'भगवान्' मानोगे तब 'देवता' किन्हें मानोगे? ये जो दो-ताजधारी, दिव्य-गुण सम्पन्न मनुष्य हुए हैं उन्हें ही तो 'देवता' कहा जाता है। अतः श्री कृष्ण पद या श्री नारायण पद तो भगवान द्वारा दिये गये गीता-ज्ञान की प्रारब्ध है, न कि श्री कृष्ण स्वयं 'भगवान्' हैं। भगवान तो स्वर्ग अथवा वैकुण्ठ का राज्य-भाग्य देने वाला दाता है जबकि श्री कृष्ण वैकुण्ठनाथ अर्थात् वैकुण्ठ के राजकुमार हैं।

आपको स्पष्ट रीति से बताया गया था कि देवता-वर्ण सतयुग के लोगों का होता है। अतः श्री कृष्ण भी सतयुग में हुए थे। उन्हीं का नाम स्वयंवर के पश्चात् 'श्री नारायण' हुआ। इसीलिए, आप देखेंगे कि श्री नारायण के बाल्यकाल के चित्र या जीवन-कहानी नहीं मिलती। श्री कृष्ण का कीर्तन करते हुए भक्त लोग भी कहते हैं–"श्री कृष्ण, गोविन्द, हरे मुरारी, हे नाथ, नारायण वासुदेव।" अतः श्री कृष्ण ही श्री नारायण थे और वे द्वापरयुग में नहीं हुए बल्कि पावन-सृष्टि अर्थात् सतयुग में हुए थे। आज भी आप देखिये कि जब श्री नारायण से सम्बन्धित 'दीपावली त्यौहार' मनाया जाता है तो लोग घरों को साफ करते हैं, नये वस्त्र पहनते हैं और घर के कोने-कोने में दीपक जगाते हैं। ये रस्म-रिवाज़ इस बात को सूचित करते हैं कि जब सृष्टि में सभी का आत्मा रूपी दीपक जगा हुआ था और मन रूपी मन्दिर पवित्र था अर्थात् जब सतयुग था, तभी श्री लक्ष्मी और श्री नारायण का राज्य था।

इन बातों को जानकर आप सोचिये कि क्या श्री कृष्ण अथवा श्री नारायण द्वापरयुगी अपवित्र सृष्टि पर पदार्पण कर सकते हैं? नहीं, नहीं! श्री कृष्ण को तो विकारी हाथ छू भी नहीं सकते, उन पर तो म्लेच्छों की दृष्टि भी नहीं पड़ सकती, वह अज्ञानियों की सृष्टि में तो जन्म ले ही नहीं सकते। वह तो सतोप्रधान थे और सभी मनुष्यों में श्रेष्ठ थे; उनका जन्म तो सतयुग के प्रारम्भ में हुआ था। द्वापरयुग में तो देवता धर्म के लोग वाम-मार्ग में चले गये होते हैं तब श्री कृष्ण के जैसा देवताई तन होता ही नहीं है। अतः स्पष्ट है कि श्री कृष्ण का जन्म द्वापरयुग में नहीं, बल्कि सतयुग के आरम्भ में हुआ था और गीता- ज्ञान देने के लिए भगवान् का अवतरण

मोर मुकुटधारी, अति सुन्दर और श्रेष्ठ देवता श्री कृष्ण के देवताई तन में नहीं हुआ था, बल्कि संगमयुग में प्रजापिता ब्रह्मा के साधारण मानवीय तन में हुआ था क्योंकि भगवान् के महावाक्य हैं कि "हे वत्स, मैं अव्यक्त परमात्मा, साधारण मनुष्य-तन में आता हूँ, इसलिए अनेक मूढमति लोग मुझे व्यक्त मानते और तुच्छ समझते हैं।" श्री कृष्ण का तन तो अति सुन्दर था, वह तो आज भी यदि प्रकट हो जाये तो उन्हें देखकर कोई भी नत-मस्तक हुए बिना तथा उन पर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकेगा।

अतः यह महत्त्वपूर्ण बात आपको ज्ञात होनी चाहिए कि परमपिता परमात्मा शिव गीता-ज्ञान देने के लिए प्रजापिता ब्रह्मा के तन में अवतरित हुए। वही ब्रह्मा सतयुग के आदि में श्री कृष्ण अथवा श्री नारायण थे और वे भगवान् के अवतरण के समय ८४वें साधारण मनुष्य-रूप में, वानप्रस्थ अवस्था में थे। उनके ८४ जन्मों की कहानी हम आपको पहले सुना चुके हैं और उस कहानी से यह भी बता चुके हैं कि वही प्रजापिता ब्रह्मा गीता-ज्ञान को धारण करने के फलस्वरूप [illegible] सतयुग के आदि में श्री कृष्ण अर्थात् श्री नारायण पद को प्राप्त [illegible] कृष्ण की भी माता है और गीता के भगवान् शिव श्री कृष्ण के भी [illegible] हैं

जिज्ञासु—बहन जी, यह तो मैं मानता हूँ कि ज्ञान के सागर [illegible] ही है और कि परमात्मा ज्योतिस्वरूप हैं, वह जन्म-मरण के [illegible] शिशु-रूप में अपना शरीर नहीं लेते, उनके कोई माता-पिता [illegible] होते और वह धर्म-ग्लानि के समय अर्थात् कलियुग के अन्त में [illegible] भगवान् के आने के बाद तो सतयुग ही आना चाहिए। [illegible] आती है कि वह एक साधारण मनुष्य तन में आते हैं [illegible] देते हैं। अगर वह श्री कृष्ण के तन जैसे देवताई तन में आते [illegible] ही से पहचान लेता और यह जो कहा गया है कि [illegible] दी, ऐसा भी न होता। फिर ८४ जन्मों की जो कहानी आपने सुनाई है [illegible] अब मैं यह भी मानता हूँ कि श्री कृष्ण [illegible] [illegible]

क्या गीता के भगवान् ने कोई हिंसक युद्ध कराया था? श्री कृष्ण पहले या श्री राम पहले?

ब्रह्माकुमारी—आपके प्रश्न ठीक हैं। किन्तु आप जरा सोचिये कि भगवान् जो दैवी सम्पदा की अथवा 'सत्-धर्म' की स्थापना के लिये अवतरित हुए थे, क्या किसी हिंसा-युक्त युद्ध के लिए सारथी बने होंगे? क्या कोई पिता अपने बच्चों को आपस में लड़ाता है? क्या कोई महात्मा कभी लड़ने का उपदेश देता है? तो महात्माओं से भी महान्, परमपिता परमात्मा ने क्या खूनरेजी कराई होगी? धर्म का तो परम लक्षण ही अहिंसा है, तो क्या हिंसा के लिये उपदेश देने वाला वक्ता किसी उच्च धर्म की, इन पर भी दैवी धर्म की स्थापना कर सकता है? भगवान् से तो लोग सद्बुद्धि और दिव्यगुण माँगते हैं, वह तो पतित पावन हैं और मानव को देवता बनाने वाले हैं, न कि उन्हें क्रोध, प्रतिशोध, हिंसा, द्वेष और युद्ध की शिक्षा देकर पतित करने वाले। अतः आपको मालूम रहे कि भगवान् जिस समय अवतरित हुए, उस समय सारे संसार के लोग अज्ञानी, योग-भ्रष्ट और धर्म-भ्रष्ट होने के कारण एक-दूसरे के विरुद्ध ठने हुए थे और यह सारा संसार ही एक युद्ध क्षेत्र-सा बना हुआ था। सृष्टि रूपी कर्म-क्षेत्र ही कुरुक्षेत्र है जो उस समय एक युद्ध-स्थल का रूप लिये हुए था क्योंकि घर-घर में कलह और झगड़ा था। तब परमपिता परमात्मा ने प्रजापिता ब्रह्मा के तन में अवतरित होकर माया अर्थात् काम, क्रोधादि विकारों से युद्ध करने की शिक्षा दी थी। यही वास्तव में '**धर्म-युद्ध**' है और इस युद्ध द्वारा, न कि हिंसा-युक्त युद्ध द्वारा स्वर्ग का अटल, अखण्ड तथा निर्विघ्न स्वराज्य प्राप्त हो सकता है।

फिर आपको यह भी मालूम होना चाहिए कि शरीर को भी आत्मा का '**रथ**' माना गया है। अतः प्रजापिता ब्रह्मा के तन में मानवी आत्मा तो थी ही, उस तन में भगवान् शिव के 'दिव्य-प्रवेश' को अर्जुन का '**सारथी होना**' अर्थात् उसके 'तन रूपी रथ' में एक साथ सवार होना —ऐसा कहा गया है। परन्तु इन धार्मिक और अव्यक्त भावों को प्रकट करने वाले शब्दों का वास्तविक अर्थ न जानने के कारण आज लोगों ने अर्थ का अनर्थ कर दिया है, मानो कि गीता का खण्डन कर दिया है।

इसके अतिरिक्त, ८४ जन्मों की कहानी सुनाते हुए तथा सृष्टि-रचना के आदि-मध्य-अन्त के रहस्य को खोलते समय हमने यह भी स्पष्ट किया था कि सतयुग में मनुष्य सोलह कला सम्पूर्ण अवस्था वाले होते हैं और त्रेतायुग में मनुष्य चौदह कला सम्पूर्ण अवस्था वाले। अतः स्पष्ट है कि श्री कृष्ण, जो कि १६ कला

सम्पूर्ण थे, वह श्री राम से पहले हुए थे। परन्तु आज लोगों को यह वास्तविक ज्ञान नहीं है।

जिज्ञासु—बहन जी, यह जो रहस्य आज आपने सुनाए हैं, यह बहुत नए और गुह्य हैं। यह हैं तो सत्य, परन्तु हैं बहुत गहन। इसलिए मैं सोचता हूँ कि क्या हमारे लिए यह इतने आवश्यक हैं? क्या हम गृहस्थी लोगों के लिए इनको जानने या न जानने से कोई अन्तर पड़ता है? गीता का भगवान् शिव हो या श्री कृष्ण, क्या इस प्रश्न का हमारे प्रैक्टीकल जीवन से भी कोई सम्बन्ध है? हम तो जीवन में पवित्रता, सुख और शान्ति चाहते हैं; तो क्या इस प्रश्न का कोई सम्बन्ध पवित्रता, सुख और शान्ति की प्राप्ति से है?

क्या गीता के भगवान् को जानना ज़रूरी है?

ब्रह्माकुमारी—हाँ, जीवन में पवित्रता, सुख और शान्ति की प्राप्ति के साथ तो इस प्रश्न का बहुत गहरा सम्बन्ध है। इस पहेली को जानने से तो मनुष्य मुक्ति और जीवनमुक्ति का अधिकारी होता है। आप पूछेंगे—कैसे?

देखिए, गीता के भगवान् के महावाक्य हैं—"हे वत्स, तू एक मुझे याद कर (मन्मना भव), मैं तुझे सभी पापों से मुक्त कर दूँगा (सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि)। अब प्रश्न उठता है कि ये महावाक्य किसके हैं? श्री कृष्ण देवता के या ज्योतिस्वरूप परमात्मा शिव के? शरीरधारी देवता को याद करने से मनुष्य भला मुक्ति की अवस्था अर्थात् शरीर के बन्धन से न्यारी अवस्था कैसे प्राप्त कर सकता है? फिर पतित-पावन या पापकटेश्वर तो एक परमात्मा ही है, दूसरा कोई तो पापों का नाश कर नहीं सकता, क्योंकि परमात्मा एक है, परमात्मा के कर्त्तव्य एक परमात्मा ही कर सकता है, दूसरा कोई नहीं। इसलिए, यह बात स्पष्ट करनी पड़ती है कि गीता-ज्ञान वास्तव में सर्व-आत्माओं के परमपिता, ज्योतिस्वरूप, मुक्ति-जीवन-मुक्ति के दाता, ब्रह्मा, विष्णु और शंकर के भी रचयिता, ज्ञान के सागर, लौकिक जन्म से रहित, पतित-पावन परमात्मा शिव ने दिया और उसे ही आप याद कीजिए, उस परमात्मा से ही आपको मुक्ति-जीवनमुक्ति अथवा श्री नारायण (श्री कृष्ण) जैसे देवपद की प्राप्ति होगी।

इस पहेली को न जानने से हानि

इसके अतिरिक्त गीता में यह जो महावाक्य है कि "सूर्य, चाँद और तारागण के भी पार मेरा परमधाम है, मैं सृष्टि रूपी अविनाशी वृक्ष का बीज रूप हूँ, यह

सृष्टि-चक्र मेरी अध्यक्षता में घूमता है, मैं अजन्मा हूँ, फिर भी मेरा जन्म है, परन्तु वह जन्म दिव्य है," आदि-आदि, यह सभी महावाक्य श्री कृष्ण और उसके जन्म पर चरितार्थ नहीं होते। अतः भारतवासियों को तो विशेष तौर पर यह बताने की **आवश्यकता है कि गीता-ज्ञान परमपिता परमात्मा शिव ने दिया था क्योंकि भारत** में तो घर-घर में गीता का पाठ होता है। हर सत्संग में गीता के श्लोकों का उद्धरण दिया जाता है। परन्तु चूँकि उन्हें यह मालूम नहीं है कि गीता में 'भगवान्' शब्द किसका वाचक है, वे श्री कृष्ण को याद करते हैं। परन्तु श्री कृष्ण तो **गीता-ज्ञान का फल है**, वह तो गीता से होने वाली **प्राप्ति** का प्रतीक है। श्री कृष्ण पूर्ण पावन है, **परन्तु पापकटेश्वर या मुक्तेश्वर तो नहीं है; वह वैकुण्ठनाथ है, परन्तु वैकुण्ठनाथ बनाने वाला, सबका परमपिता तो भगवान् शिव ही है। अतः उस परमपिता परमात्मा को याद न करने से ही मनुष्य को गीता-ज्ञान के फल की प्राप्ति नहीं** हुई।

इस प्रकार, **गीता-पति** भगवान् शिव की बजाय गीता-**पुत्र** श्री कृष्ण का नाम गीता-पति या वक्ता के रूप में अंकित करने से मनुष्य जन्म-जन्मान्तर पाप का भागी बनता रहा है। इसी कारण संसार में पापाचार और हाहाकार बढ़ा है। यही एकज भूल है जिससे भारत के लोग गीता के अर्थ का अनर्थ कर बैठने के कारण दुःखी हुए हैं और भारत नरक बन गया है। संसार के शिरोमणी शास्त्र गीता के (शिव) की बजाय उसके पुत्र (श्री कृष्ण) को उसका वक्ता मानने के कारण, गीता का खण्डन हो गया और गीता के खण्डित होने से सभी शास्त्र रूप बाल-बच्चों का भी खण्डन हो गया। **भगवान्** के नाम के स्थान पर एक दिव्य-गुणधारी **मनुष्य** का नाम डालने से गीता का माहात्म्य ही कम हो गया और ईश्वर से विमुख होकर दिव्य-गुण सम्पन्न **मनुष्य** को याद करने लगे।

इस पहेली को जानने से लाभ होगा?

देखिए तो अपने धर्म-शास्त्र के वक्ता को न जानने से कितनी जबरदस्त हानि हो गई! अगर भारतवासी और विश्व के लोग यह रहस्य जानते कि गीता-ज्ञान सर्व आत्माओं के परमपिता निराकार परमात्मा शिव ने, प्रजापिता ब्रह्मा अथवा आदम के द्वारा दिया था तो आज संसार के सभी लोग गीता को सर्वोत्तम धर्म-ग्रन्थ मानकर इसे शिरोधार्य करते। वे इसे स्वयं परमात्मा के महावाक्य मानकर इसकी आज्ञाओं का पालन करते और परमात्मा के परिचय के बारे में सभी मनुष्य एकमत होते और कोई भी मनुष्य नास्तिक न होता। परन्तु **'भगवद्गीता'**—ऐसा नाम है

जिस शास्त्र का और जिस शास्त्र में 'भगवानुवाच' आदि शब्दों का प्रयोग है, ऐसे शास्त्र को देवता का शास्त्र मानने के कारण, आज संसार के अन्य धर्मों के लोग इसे केवल देवता धर्म या आदि सनातन धर्म का शास्त्र मानते हैं और इसे ईश्वरीय महावाक्यों का संग्रह नहीं मानते। यदि आज भी संसार के सभी लोगों को इस रहस्य का ज्ञान हो जाये कि गीता-ज्ञान वास्तव में परमपिता परमात्मा शिव ने दिया था जिनका अवतरण प्रजापिता ब्रह्मा अथवा आदम के तन में, भारत में हुआ था, तो सभी धर्मों के अनुयायी भारत को ही मुख्य तीर्थ-स्थान मानने लगेंगे और परमपिता परमात्मा को न जानने के कारण आज भाई-भाई में जो लड़ाई ठनी है, उसका अन्त हो जाएगा और सभी का ध्यान उस परमपिता परमात्मा की ओर जायेगा और वे मुक्ति तथा जीवनमुक्ति के अधिकारी बन जायेंगे।

आज यदि भारतवासियों को मालूम होता कि गीता-ज्ञान परमात्मा शिव ने साधारण मनुष्य-तन में प्रवेश करके कलियुग के अन्त और सतयुग के आरम्भ के संगम समय दिया था तो वे भगवान् के अवतरण के समय को तथा उनके साकार माध्यम को भी पहचान लेते और गीता-ज्ञान से लाभान्वित होते। परन्तु वे तो आशा लगाये बैठे हैं कि गीता के भगवान् श्री कृष्ण के रूप में आयेंगे, लेकिन उन्हें यह मालूम नहीं है कि पहले गीता के भगवान् का अवतरण धर्म-ग्लानि के समय ब्रह्मा के तन में होता है और जब धर्म की स्थापना हो चुकी होती है तथा भारत स्वर्ग बन जाता है तब श्री कृष्ण का इस सृष्टि में जन्म होता है। तो देखिये, इस प्रश्न को न जानने से कितना अन्तर पड़ा है और अब तक भी अन्तर पड़ रहा है!

गीता की अपार महिमा

जिज्ञासु—बहन जी, आपने यह खूब कहा कि यदि संसार के सभी लोगों को यह मालूम होता कि गीता-ज्ञान सर्व आत्माओं के परमपिता शिव ने साकार प्रजापिता ब्रह्मा (आदम) द्वारा दिया था और कि उस द्वारा स्वर्ग अथवा पैराडाइज़ स्थापित हुआ था, जिसमें कि श्री कृष्ण सबसे पहले राजकुमार थे, तो सभी धर्मों के लोग गीता को अपना सर्वोत्तम ग्रन्थ मानते और भारत को अपना सर्वोत्तम तीर्थ-स्थान मानते। बहन जी, इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि ज्योतिस्वरूप परमात्मा शिव को सभी आत्माएँ अपना परमपिता मानें, प्रजापिता ब्रह्मा अथवा आदम को अपना आदि धर्म-पिता मानें, और गीता को परमपिता परमात्मा के महावाक्यों का संग्रह मानें, तब तो संसार में भावात्मक एकता (Integration) की समस्या हल हो जायेगी और यह संसार स्वर्ग बन जाएगा। यह भी सच है कि गीता के भगवान् की

जो आज्ञा है, इसको यथार्थ-रूप से पालन भी तभी कर सकेंगे और मुक्ति-जीवनमुक्ति तभी प्राप्त कर **सकेंगे।**

परन्तु बहन जी, एक बात और पूछना चाहता हूँ कि श्री कृष्ण के बारे में पुराणों में यह जो वर्णन आया है कि उसकी १६,१०८ पटरानियाँ थीं, उसने गोपियों के चीर चुराये थे, आदि-आदि, क्या ये गलत हैं या इनके कुछ तथ्य है?

ब्रह्माकुमारी–वास्तव में यह कलंक मिथ्या हैं और बात कुछ और है। आपको मैंने यह बताया है कि गीता के भगवान् शिव काम, क्रोध आदि विकारों पर विजय प्राप्त करने के लिए ज्ञान-युद्ध अथवा धर्म-युद्ध की शिक्षा देते हैं। वे मनुष्यों की बुद्धि रूपी तरकश में ज्ञान रूपी बाण भरते हैं और उन्हें योग रूपी कवच तथा सृष्टि-चक्र की समझ रूपी ढाल देते हैं।

माला के १०८ मणकों का रहस्य और १०८ तथा १६ १०८ का माहात्म्य

अब जो मनुष्यात्माएँ माया अर्थात् विकारों से युद्ध करती हैं, उनमें से १०८ सम्पूर्ण विजयी होती हैं। अतः आज तक भी उनकी याद में १०८ मणकों की माला अथवा सिमरनी भक्त लोग प्रयोग करते हैं। उस सिमरनी का नाम 'वैजयन्ती माला' इसी कारण है कि वह ज्ञान-बल तथा योग-बल द्वारा माया पर **पूर्ण विजय** प्राप्त करने वाली आत्माओं का स्मरण-चिन्ह है। आप देखते हैं कि माला में १०८ ... के ऊपर एक मणका होता है जिसे 'मेरू' भी कहते हैं। वह युगल मणका ... ब्रहमा और जगदम्बा सरस्वती का प्रतीक है जिस द्वारा कि परमपिता परमात्मा शिव ज्ञान और योग की शिक्षा देते हैं। माला में सबसे ऊपर जो 'फूल' होता है, वह सर्व-आत्माओं से 'न्यारे', परमपिता परमात्मा शिव का प्रतीक है जो कि ज्ञान देकर मनुष्यात्माओं को विजयी बनाते हैं। परमात्मा शिव ही वास्तव में 'श्री-श्री १०८ जगद्गुरु' हैं क्योंकि वह ही सारे जगत् के गुरु तो हैं ही और वह १०८ आत्माओं को 'श्री अर्थात् श्री लक्ष्मी व श्री नारायण के समान माया पर विजयी देवी-देवता पद के योग्य बनाते हैं। परन्तु इस रहस्य को न जानने के कारण आज अनेकानेक मनुष्य परमात्मा की यह उपाधि धारण करने की धृष्टता करते हैं, और, इस प्रकार लोगों को वास्तविक जगद्गुरु, **श्री-श्री** १०८ सद्गुरु ज्योतिस्वरूप परमपिता परमात्मा शिव से विमुख करते हैं।

अस्तु! यह जो १०८ मनुष्यात्माएँ माया अर्थात् विकारों पर विजय प्राप्त करती हैं वह वैकुण्ठ अथवा स्वर्ग में 'पटराणा' अथवा 'पटरानी' बनती हैं अर्थात् विश्व-महाराजा या विश्व-महारानी का पद प्राप्त करती हैं। "माया

जीते-जगतजीत"—यह उक्ति तो आपने सुनी ही होगी। इन १०८ दैवी-आत्माओं के स्वर्ग अथवा वैकुण्ठ में जो निकट के मित्र-सम्बन्धी कुटुम्बी या परिवार-जन होते हैं, वह १६,००० होते हैं, वे भी संगमयुग में परमपिता परमात्मा शिव के गीता-ज्ञान को प्राप्त करके पावन बने हैं। अतः १६,१०८ की संख्या भी शुभ मानी जाती है क्योंकि यह संख्या वैकुण्ठ के देवी-देवताओं में से भी उच्च, राज्यकुल की अति महान् आत्माओं को सूचित करती है। अब वास्तविकता तो यह है कि गीता के भगवान् परमात्मा शिव ने १६,१०८ मनुष्यात्माओं को माया पर विजय प्राप्त करने की शिक्षा देकर स्वर्ग का दैवी राजा, रानी या राज्य-कुल का सदस्य बनाया था, परन्तु बाद में इस वास्तविकता को न जानने के कारण यह भ्रान्ति प्रसिद्ध हो गई कि श्रीकृष्ण की १६,१०८ पटरानियाँ थीं। आप किंचित विचार कीजिए कि क्या १६ कला पवित्र देवता श्री कृष्ण की भला १६,१०८ पटरानियाँ हो सकती हैं? यह मिथ्या कलंक तो अति पतित दृष्टि वाले लोगों ने अति पावन देवता श्रीकृष्ण पर लगाकर सुनने तथा पढ़ने वालों को भी पतित बनाया है।

इसी प्रकार देह को आत्मा का 'वस्त्र' भी कहा गया है। गीता के भगवान् ने कल्प वृक्ष का ज्ञान देकर, ज्ञान-स्नान करने वाली आत्माओं के शरीर रूपी वस्त्र के भान को हर लिया था अर्थात् उन्हें विदेही (देह-अभिमान से रहित) कर दिया था परन्तु अज्ञानी और मिथ्या-ज्ञानी लोग संसार के सभी मनुष्यों में से श्रेष्ठ, सबसे उच्च चरित्र वाले देवता श्री कृष्ण पर यह दोष आरोपित करते हैं कि श्री कृष्ण ने गोपियों के वस्त्र चुराये थे, यह कितना बड़ा पाप है!

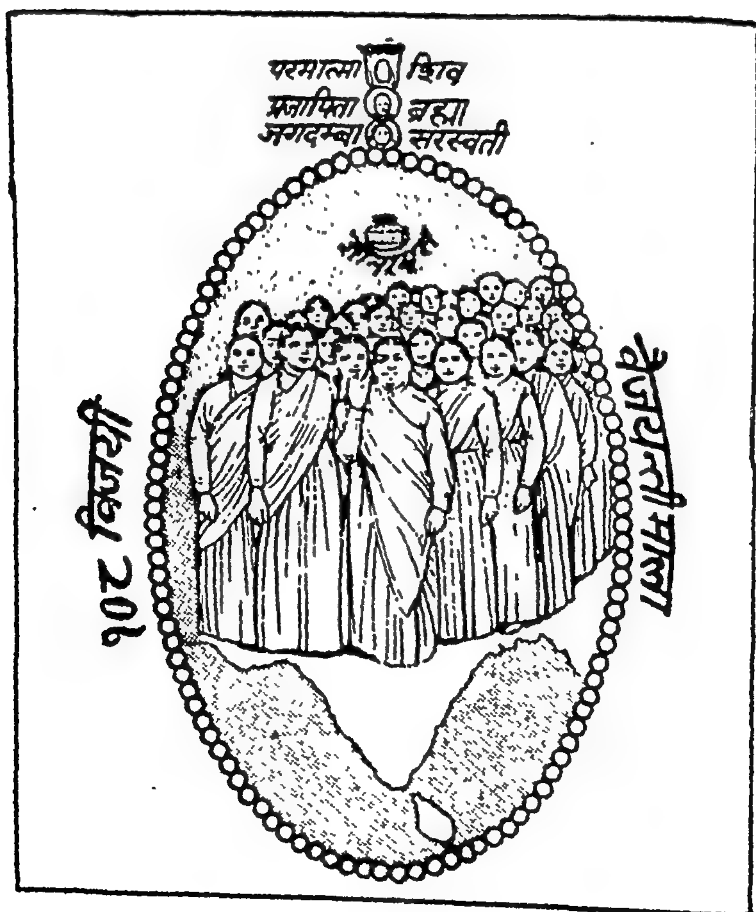
जिज्ञासु—देखिये तो, कितने उच्च रहस्य को लोगों ने कितना गलत समझाया और बताया है और इन दूषित वर्णनों द्वारा दूसरों को भी गिराया है तथा अपने सर्वोत्तम धर्म को भी बदनाम करके, उन्हें धर्म बदलने के लिए प्रेरित किया है! बहन जी, सचमुच, परमपिता परमात्मा शिव ने जो ज्ञान दिया है, वह तो मनुष्य के मन के कपाट खोलने वाला है। ये बातें तो सभी को मालूम होनी चाहियें।

इन रहस्यों को जानकर अब क्या पुरुषार्थ करना है?

ब्रह्माकुमारी—परन्तु इनको मालूम करके अपने जीवन को उच्च कैसे बनाना है, यह बात भी तो समझिये। आज आपको हमने बताया है कि हमारे धर्म का वास्तविक नाम 'आदि-सनातन देवी-देवता' धर्म है, परन्तु आज हम इस बात को भूलने के कारण स्वयं को 'हिन्दू' कहलाने लगे हैं और देवी-देवताओं की केवल महिमा और पूजा करते हैं। उनकी महिमा में तो कहते हैं—"आप सर्वगुण सम्पन्न,

सोलह कला सम्पूर्ण, सम्पूर्ण निर्विकारी और मर्यादा पुरुषोत्तम हैं" और अपने बारे में कहते हैं–"हम दास हैं, नीच हैं, कामी और कपटी हैं" आदि आदि। परन्तु अब जबकि आपने अपने धर्म का वास्तविक नाम जान लिया है तो आपको स्वयं देवता बनने का पुरुषार्थ करना है, अपने धर्म में स्थित होना है अर्थात् दैवी-गुण धारण करने हैं, कामी और विकारी ही नहीं बने रहना है।

दूसरे आज हमने यह भी बताया है कि हमारा धर्म-ग्रन्थ वास्तव में एक गीता ही है और गीता-ज्ञान परमात्मा शिव ने दिया था। "मन्मनाभव " आदि महावाक्य



उन्हीं के हैं, श्री कृष्ण के समान देव-पद के योग्य बनाने वाले शिव ही हैं, जो संगमयुग में प्रजापिता ब्रह्मा के तन में अवतरित होते हैं। अतः यह ज्ञान लेने के बाद हमें अनेक-अनेक शास्त्रों से बुद्धि हटा लेनी चाहिये और अब संगमयुग में परमपिता परमात्मा शिव प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा जो वास्तविक गीता-ज्ञान नर को श्री नारायण, नारी को श्री लक्ष्मी बनाने के लिये दे रहे हैं, सो उसे धारण कर हमें भी सर्वगुण सम्पन्न, १६ कला सम्पूर्ण, सम्पूर्ण निर्विकारी, मर्यादा पुरुषोत्तम बनना है।

तीसरे, वैजयन्ती माला का रहस्य समझाते हुए बताया गया था कि १०८ मनके उन्हीं की यादगार हैं जिन्होंने कि माया अर्थात् मनोविकारों पर सम्पूर्ण विजय प्राप्त की थी। इस बात को जानकर अब माला फेरने के बजाये हमें स्वयं ही माला का चेतन मणका बनने का पुरुषार्थ करना चाहिए, अर्थात् हमें स्वयं माया पर विजय प्राप्त करके शिव का वैजयन्ती रत्न बनना चाहिए।

जिज्ञासु—हाँ बहन जी, अवश्य ही हम ऐसा पुरुषार्थ करेंगे।

भारत का सर्व प्राचीन सहज राजयोग

ब्रह्माकुमारी—हमने आपको आत्मा का, परमपिता परमात्मा का, सृष्टि-चक्र के आदि-मध्य-अन्त का, भारतवासियों के आदि धर्म के वास्तविक नाम और भगवान् के महावाक्यों के शास्त्र आदि-आदि का जो ईश्वरीय ज्ञान सुनाया है, उस सबका उद्देश्य है श्रोता को 'नष्टोमोहः और स्मृतिर्लब्धा' बनाना अर्थात् देह और देह के विषय-पदार्थों तथा सगे-सम्बन्धियों से मोह-ममता निकालना और आत्मा की स्मृति में तथा परमपिता परमात्मा शिव की स्मृति में स्थित होना। इस स्थिति से ही आत्मा आनन्द और शान्ति प्राप्त करती है। इस ही से पिछले अनेक जन्मों में किए हुए विकर्म दग्ध होते हैं क्योंकि योग एक **अग्नि के समान है**। योग ही से आत्मा का मैल धुलता है, गंगा आदि नदियों में स्नान करने से तो शरीर का मैल ही धुल सकता है,आत्मा का नहीं। योग के बिना मनुष्य पतित से पावन नहीं बन सकता। योग ही वास्तव में 'सत्संग' है क्योंकि इस द्वारा ही आत्मा को सत्य स्वरूप परमात्मा का संग प्राप्त होता है। योग-बल द्वारा ही मनुष्य कर्मेन्द्रियों को जीत लेता है और मनोविकारों अथवा माया पर भी विजय प्राप्त कर लेता है। योग में इतनी शक्ति है कि तत्त्व भी इसके प्रभाव से सतोगुणी हो जाते हैं और विश्व में शान्ति स्थापित हो जाती है। इसलिए, इस ईश्वरीय ज्ञान का सार ग्रहण करके योगी बनो क्योंकि योग द्वारा आत्मा को परमात्मा के साथ मिलन का अपार और अलौकिक सुख प्राप्त होता है।

जिज्ञासु—बहन जी, वह योग ही तो मैं सीखना चाहता हूँ। उसके लिए तो मेरा मन बहुत ही प्यासा है। 'योग' किसे कहते हैं और योग की विधि क्या है? वह आप मुझे बताइये।

'योग' का अर्थ क्या है; योग किसे कहते हैं?

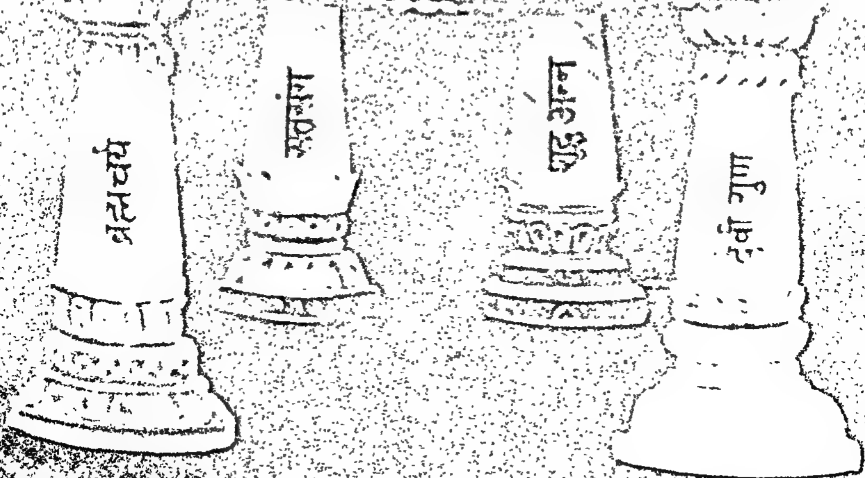
ब्रह्माकुमारी—योग का अर्थ है जोड़(Connection) । जोड़ किसका, किससे? आत्मा का जोड़ परमात्मा से। आज भले ही मनुष्य कहते हैं कि परमात्मा हमारा पिता है, परन्तु परमात्मा के साथ उसका प्रैक्टीकल रीति सम्बन्ध जुड़ा हुआ

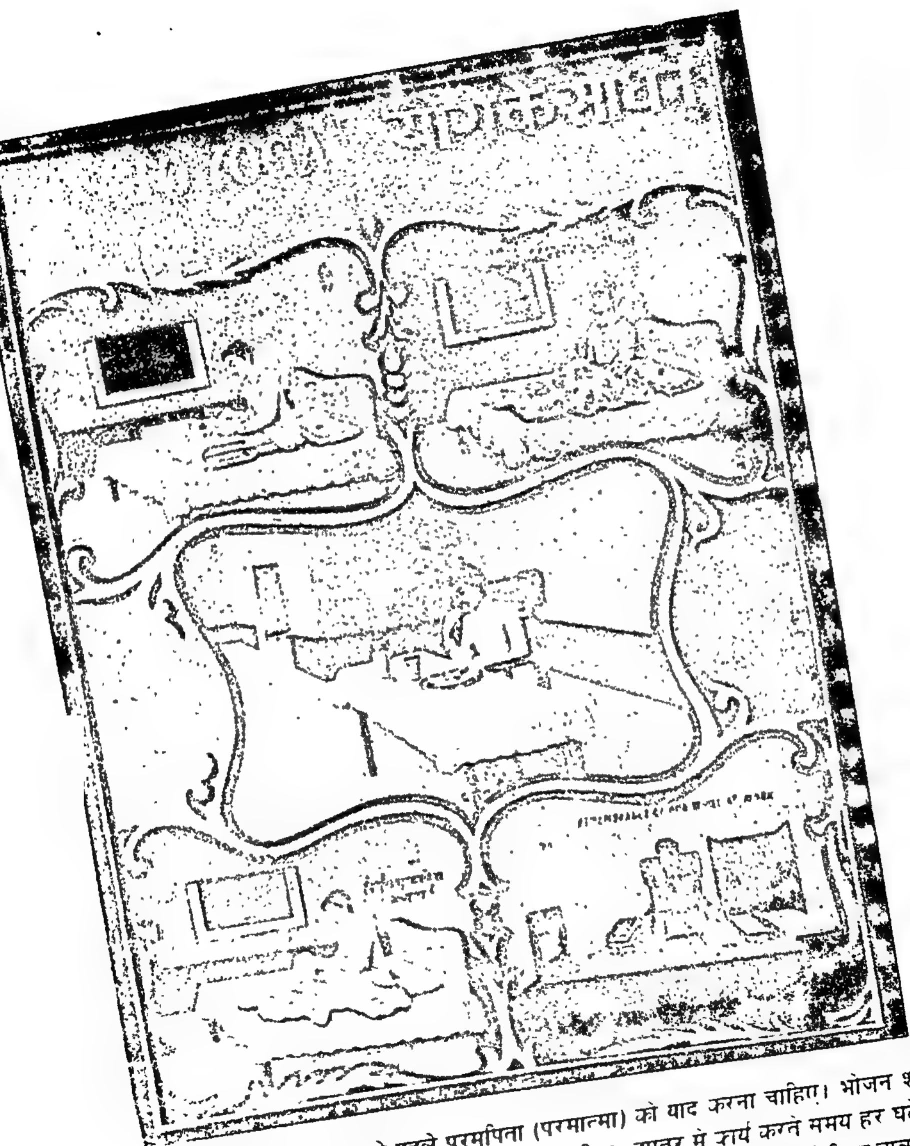
राजयोग के स्तम्भ



राजयोग से प्राप्ति

सच्चा योगी जीवन





योगाभ्यासी को प्रातः सबसे पहले परमपिता (परमात्मा) को याद करना चाहिए। भोजन श... करते समय भी पहले उसकी स्मृति में स्थित होना चाहिए। दफ्तर में कार्य करते समय हर घ... कम-से-कम ५ मिनट आवश्यक योग में स्थित होना चाहिए। रात्रि को सोने से पहले शिव बाब... याद में स्थित होना चाहिए तथा अपना दैनिक चार्ट लिखना चाहिए।

नहीं है। अगर सर्वशक्तिमान्, त्रिलोकीनाथ और शान्ति के सागर परमात्मा के साथ आत्मा का सम्बन्ध जुड़ा हुआ होता तो आज आत्मा की यह हालत न होती। इस संसार में भी हम देखते हैं कि कोई राजा का लड़का होता है तो उसे नशा रहता है कि "मैं राजा का पुत्र हूँ,उसकी सम्पत्ति का वारिस हूँ, उसके तख्त का उत्तराधिकारी हूँ। मैं उच्च कुल (Royal family) का हूँ", आदि-आदि। इसी प्रकार कोई व्यक्ति किसी राज्यपाल का लड़का होता है, तो उसे भी अपना नशा रहता है। परन्तु आज मनुष्यात्मा को अपने जीवन और व्यवहार में यह नशा कहाँ है कि–"मैं आत्मा त्रिलोकीनाथ, सर्वशक्तिमान्, आनन्द के सागर और स्वर्गिक राज्य-भाग्य के दाता परमात्मा की सन्तान हूँ?" अगर उसे यह स्मृति अथवा यह नशा होता तो उसे यह कहना थोड़े ही पड़ता कि परमात्मा की स्मृति में स्थित होवो, उस परमपिता के साथ सम्बन्ध जोड़ो। किसी राजकुमार को यह थोड़े ही कहना पड़ता है कि तुम अपने पिता को याद करो। उसे अपना पिता तो याद रहता ही है, तभी तो वह अपने को राजकुल का सदस्य मानता है और उत्तराधिकारी की खुशी और नशे में रहता है। परन्तु मनुष्यात्मा चूँकि अनेक जन्मों से परमपिता परमात्मा को भूल चुकी है, इसलिए अब उसे ईश्वरीय स्मृति का अभ्यास करने के लिए कहना पड़ता है।

दूसरी बात यह भी है कि राजकुमार का पिता और उसकी सम्पत्ति तथा राज्य-भाग्य तो हर समय राजकुमार की अपनी स्थूल आँखों के सामने होता है, इसलिए उसे उसकी स्मृति रहती ही है, परन्तु आत्मा के जो परमपिता परमात्मा हैं, वह तो सूक्ष्म हैं,वह इन स्थूल आँखों से दिखाई नहीं देते और उन द्वारा जो मुक्ति या स्वर्गिक राज्य-भाग्य प्राप्त होता है, वह भी इन स्थूल आँखों के सामने तो इस समय नहीं है। इसलिए, मनुष्य बार-बार परमपिता परमात्मा को तथा उन द्वारा प्राप्त होने वाले उत्तराधिकार-मुक्ति और स्वर्गिक राज्य-भाग्य को भूल जाता है क्योंकि इसमें सूक्ष्म पुरुषार्थ की आवश्यकता है।

परन्तु अब जिसने ज्ञान-चक्षु प्राप्त किया है, उसकी आँखों के सामने तो मुक्ति और जीवनमुक्ति अर्थात् स्वर्गिक स्वराज्य हर समय फिरता ही रहेगा, वह तो बुद्धि की आँखों से हर समय देख ही रहा है कि अब इस कलियुगी सृष्टि के महाविनाश की तैयारियाँ हो रही हैं और अब सतयुगी सृष्टि की पुनः स्थापना का कार्य भी हो रहा है, इसलिए इस कलियुगी सृष्टि का बेड़ा डूबते देख, वह अपने मन-बुद्धि को इससे निकालकर पहले से ही परमपिता परमात्मा की ज्ञान रूपी नाव में स्वयं को सुरक्षित कर लेता है। उसे तो कलियुगी सृष्टि और इसके सभी विषय-पदार्थ आदि तो अब

तमोप्रधान, निस्सार और नाश हुए से दिखाई देते हैं और उसका मन वारम्वार उस परमपिता परमात्मा की स्मृति में जाता है जो कि खेवनहार, तारनहार, पतित-पावन और सद्गतिदाता हैं। उसकी वुद्धि केवल ब्रह्मलोक में तथा स्वर्ग में ही टिकती है। इस कलियुगी सृष्टि रूपी कचड़े के ढेर पर अव उसका मन वैठना ही नहीं चाहता। अनुभव कहता है कि अगर पाँच वातों को मनुष्य अच्छी तरह समझ ले तो उसकी वुद्धि परमात्मा की स्मृति में स्थित हो जाती है। परमपिता परमात्मा की स्मृति और स्थिति का नाम ही 'योग' है।

जिज्ञासु–वह पाँच वातें कौनसी हैं जिनसे परमपिता परमात्मा की स्मृति में स्थित होने में सहायता मिलती है?

१. परमपिता परमात्मा से सम्बन्ध

ब्रह्माकुमारी–उनमें से सबसे पहले तो मनुष्य को अच्छी तरह से यह ज्ञान होना चाहिए कि परमात्मा से हमारा **सम्बन्ध** क्या है? सम्वन्ध का ज्ञान स्मृति के लिए आवश्यक है। संसार में, व्यावहारिक जीवन में भी तो मनुष्य को उन्हीं की याद वार-वार आती है जो कि उसके सम्वन्धी होते हैं। जो जितने नजदीकी सम्वन्धी होते हैं, उनकी उतनी ही याद मनुष्य को स्वतः ही विना पुरुषार्थ के आया करती है। योग में अर्थात् परमात्मा की स्मृति में स्थित होने के समय भी यदि मनुष्य को परमपिता परमात्मा के सिवाय अन्य कोई और की भी याद आती है तो उस पर विचार करने से आप इसी निर्णय पर पहुँचेंगे कि तव भी उसे कोई-न-कोई देह के सम्वन्धी आदि जैसे कि माता-पिता, स्त्री, वच्चे, मित्र और अफसर आदि ही याद आते हैं।

अतः अव जवकि परमपिता परमात्मा की अनन्य स्मृति में हम स्थित होकर आनन्द का रस लेना चाहते हैं, तो हमें सोचना चाहिए कि–"यह जो देह के सम्बन्धी–स्त्री और पुत्र आदि मुझे वार-वार याद आते हैं, यह सभी तो मेरे एक ही जन्म के सम्बन्धी हैं और इनके साथ मेरा जो सम्वन्ध है, वह भी कर्मों के हिसाव-किताव के कारण है, परन्तु, मेरे अविनाशी सम्वन्धी मुझ आत्मा के परमपिता, परममित्र परमात्मा शिव ही हैं, अतः मुझे वास्तव में तो उन्हीं की स्मृति सर्वाधिक होना चाहिए। **देह के सम्बन्धियों की स्मृति तो हमें पुनः-पुनः जन्म-मरण में ले आती रही है और कर्मों की रस्सियों में हमें जकड़ती रही है। परन्तु परमात्मा की स्मृति तो अनेक जन्मों के कर्मों से मुक्त करने वाली है। इसलिए हमें याद तो उस परमपिता परमात्मा ही को करना चाहिए।** हमारे लौकिक माता-पिता से तो

हमें अल्पकाल क्षण-भंगुर का सुख प्राप्त होता है और हम विषय-विकार भी तो उनसे ही सीखते हैं और अपने बच्चों के तो हम हमेशा कर्जदार ही माने जाते हैं, परन्तु परमपिता परमात्मा की स्मृति से तो मन का मैल धुल जाता है और आत्मा को पवित्रता, सुख और शान्ति का गँवाया हुआ खजाना फिर से मिल जाता है। अतः उन परमपिता परमात्मा को तो अवश्य ही याद करना चाहिए, क्योंकि कल्याणकारी सम्बन्धी तो वह एक ही है जिस कारण उनकी महिमा में छन्द भी है–"त्वमेव माताश्च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव, त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्व-मम देवदेव।"

अतः अब परमपिता परमात्मा शिव हमारे ही कल्याण के लिए कहते हैं–"हे वत्स, मेरे प्यारे लाल! तुमने जन्म-जन्मान्तर तो क्षण-क्षण, पल-पल अपने देह के सम्बन्धियों को याद किया, उनसे प्रीति निभाई और उनसे लेन-देन करके भी देख लिया। अब इस अन्तिम जन्म के अन्त के शेष रहे हुए थोड़े-से समय में तो तुम मुझ परमपिता परमात्मा को सच्चे दिल से, सच्चे प्यार से, पहचान-सहित याद करो! वत्स, तुम मुझे सारा दिन कार्य-व्यवहार करते हुए, गृहस्थ संभालते हुए यदि याद नहीं भी कर सकते हो तो अच्छा, तुम आठ घण्टे जीवन-निर्वाहार्थ कोई कार्य करने के बाद और छह-आठ घण्टे सोने तथा आराम करने के अलावा जो शेष आठ घण्टे होते हैं, वह आठ घण्टे तो मेरी स्मृति में लगाओ। मेरे प्यारे बच्चे, ये आठ घण्टे तो तुम व्यर्थ संकल्पों में गँवा देते हो; तो कम-से-कम उस व्यर्थ जाने वाले समय को तो मेरी स्मृति में लगाओ! तब देखो कि तुम्हें मुझसे क्या प्राप्ति होती है! वत्स, तुम हो तो मेरी ही सन्तान, फिर तुम्हें मेरे बन जाने में क्या कठिनाई है? ओ मेरे लाल! तुम जन्म-जन्मान्तर तो भक्ति-पूजा में गाते आये हो कि–"तुम मात-पिता हम बालक तेरे" अथवा "पितु-मात, सहायक, स्वामी–सखा, तुम ही इक नाथ हमारे हो"। परन्तु अब जब मैं तुम्हें कहता हूँ कि–"अच्छा, यदि तुम्हारा मेरे साथ प्यार है और मेरा सम्बन्ध भी है तो तुम याद भी तो करो" तब "तुम मुझे दिन मे आठ घण्टे भी याद नहीं कर सकते? क्या यही तुम्हारी प्रीति है, यही तुम्हारा सम्बन्ध है, यही तुमने मुझे पहचाना है, क्या ऐसे ही तुम बुलाया करते थे? क्या चमड़ी और दमड़ी से ही तुम्हारी इतनी प्रीति लगी है कि अपने परमपिता परमात्मा को भी अपने सम्बन्ध और स्नेह से अलग कर दिया है? काम विकार से पैदा हुई गन्दी चमड़ी की अथवा हड्डी-माँस-रक्त के पुतलों को तो तुम याद करते हो और मुझ अविनाशी परमात्मा को याद नहीं करते, क्या यही तुम्हारी समझ है?"

इस प्रकार यदि हम परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध, स्नेह और आज्ञा को सामने

रखेंगे तो बार-बार हमें उस परमपिता की स्मृति आयेगी ही क्योंकि हम आत्माओं का वास्तविक सम्बन्ध तो उसी एक से ही है।

जिज्ञासु–बहन जी, इसमें कोई संदेह नहीं कि हम आत्माओं का सच्चा मीत एक परमात्मा ही है। आज उससे सम्बन्ध भूल जाने के कारण ही हमें उसकी याद नहीं आती। अब मेरे मन में यह तो बात ठीक तरह से बैठ गई है कि वह हमारा पिता है, बल्कि सब-कुछ है, अब तो मेरा स्नेह और मन अवश्य ही उसकी तरफ जाएगा। आप दूसरी कौनसी बात बताना चाहती थीं?

२. परमात्मा से प्राप्ति

ब्रह्माकुमारी–दूसरी बात यह जानना आवश्यक है कि परमपिता परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ने से अथवा उनकी आज्ञा का पालन करने से हमें क्या प्राप्ति होती है? प्राप्ति के पीछे तो मनुष्य प्राण भी लगा देता है। प्राप्ति के लिए ही तो मनुष्य पुरुषार्थ करता है। प्रातः नौ बजते हैं तो दफ्तर वालों को दफ्तर क्यों याद आ जाता है? क्या उनको कोई कहता है कि अब आप दफ्तर को याद करो अथवा वहाँ जाने की तैयारी करो? नहीं, उन्हें यह ज्ञान है कि दफ्तर जाने से वेतन मिलेगा अथवा दुकान पर जाने से कमाई होगी। कमाई अथवा प्राप्ति के कारण स्वतः ही नौ बजे दफ्तर वालों को दफ्तर की और दुकान वालों को दुकान की याद आ जाती है।

प्रकार आप देखते होंगे कि रात्रि को बारह बजे भी यदि किसी स्टेशन पर रेलगाड़ी पहुँचती है तो "चाय गर्म" की आवाज कान में पड़ती है। क्यों नहीं चाय बेचने वालों को रात को बारह बजे भी नींद आती? क्योंकि वे समझते हैं कि अब कमाई का समय है, अब जागने से कुछ प्राप्ति होगी, बाद में सो लेंगे।

एक छोटे-से बच्चे को भी प्राप्ति का चस्का लग जाता है। मान लीजिए, किसी बच्चे को आम बहुत अच्छे लगते हैं। जब उसके पिताजी के दफ्तर जाने का समय आता है, तो वह पिताजी को कहता है कि–"मैं भी आपके साथ चलूँगा।" पिताजी कहते हैं–"नहीं बेटा, मैं अब दफ्तर जा रहा हूँ, वहाँ तुम्हें नहीं ले जा सकता।" जब बेटा जिद्द करता है तो पिताजी कहते हैं–"बेटा, छोड़, मुझे जाने दे, मैं तेरे लिए आम ला दूँगा।" तब बेटा छोड़ देता है और सारा दिन इसी इन्तजार में रहता है कि कब पिताजी आयेंगे और आम लायेंगे? खेलते-खेलते भी कई बार उसे ख्याल आता है कि–"कहीं पिताजी आ तो नहीं गये और मेरे लिये आम तो नहीं लाये?" तो देखिए, प्राप्ति की आशा के कारण बच्चे को पिता की याद आती रहती है।

अब यदि मनुष्यात्मा रूपी पुत्र को यह निश्चयात्मक ज्ञान हो कि परमपिता परमात्मा से तो २१ जन्मों के लिए स्वर्ग के सम्पूर्ण सुख-शान्तिमय राज्य की प्राप्ति होती है और इस जन्म में भी पवित्रता, शान्ति, खुशी, आत्मिक-शक्ति तथा अन्य अनेक प्रकार की प्राप्ति होती है तो अवश्य ही उसे परमपिता परमात्मा की याद आयेगी। जबकि मनुष्य को दफ्तर की याद आती है, जहाँ पर कि प्रतिदिन आठ घण्टे सारा महीना काम करने के बाद कहीं जाकर उसे दो-चार सौ या दो-ढाई हजार रुपये तनख्वाह मिलती है, तो जब उसे यह निश्चयात्मक ज्ञान होगा कि परमात्मा की स्मृति से योगी जीवन का आनन्द, आत्मा का सच्चा सुख तथा शान्ति कर्मों की अथाह खुशी तो मिलती ही है, परन्तु इसके अतिरिक्त, २१ जन्मों के लिए स्वर्गिक राज्य-भाग्य भी प्राप्त होता है, जिसमें कि कोई भी वस्तु अप्राप्त नहीं होती और जीवनोपार्जन के लिए भी कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ता, तो आप ही बताइये कि वह परमपिता परमात्मा को सच्चे मन से क्यों नहीं याद करेगा? मुक्ति, स्वर्ग का राज्य-भाग्य और वर्तमान जीवन में शान्ति के अतिरिक्त मनुष्य को और चाहिए ही क्या?

शान्ति के लिए तो द्वापरयुग और कलियुग में कई राजा राज्य-भाग्य छोड़कर जंगल में चले गए। शान्ति के लिए ही तो मनुष्य परमात्मा को याद करते हैं? परन्तु क्योंकि उन्हें शान्ति के सागर परमपिता परमात्मा का परिचय ही नहीं है तो वह मन को परमात्मा की स्मृति में स्थित ही कैसे करेंगे? अतः उनके लिये तो परमात्मा का ज्ञान होना जरूरी है।

३. कर्त्तव्य और समय का ज्ञान

परमपिता परमात्मा की स्मृति में आज इसलिए भी मनुष्य का मन स्थित नहीं होता क्योंकि उसे अपने कर्त्तव्य का और वर्तमान समय तथा आने वाले समय का ज्ञान [illegible] नहीं है। [illegible] कर्त्तव्य और समय का, याद रूपी-पुरुषार्थ के साथ, तो बहुत गहरा और निकटतम सम्बन्ध है।

[illegible] अभी तो [illegible] उदाहरण दिया था कि प्रातः नौ बजते हैं और दफ्तर में [illegible] जाने वाले व्यक्ति को दफ्तर या दुकान की याद आ जाती है, [illegible]। [illegible] मनुष्य यह समझता है कि दफ्तर या दुकान [illegible] कर्त्तव्य है क्योंकि स्त्री और बाल-बच्चों को पालने के लिए कुछ [illegible] परन्तु यदि किसी दिन बच्चा बहुत बीमार हो तो वह दफ्तर [illegible] क्योंकि वह समझता है कि अब मेरा पहला

कर्त्तव्य बच्चे के लिए औषधि लाना तथा उसकी देखभाल करना है। अतः दफ्तर जाने का समय आने पर भी उसे यही विचार आता है कि–"अब का समय तो **संकटमय** है क्योंकि बच्चे के जीवन और उसकी मौत का सवाल है, इसलिए आज दफ्तर में नहीं जाऊँगा। अतः आज मेरा **पहला कर्त्तव्य** बच्चे की सेवा करना है।" तो देखिए, जो मनुष्य कल इस समय दफ्तर में या दुकान पर जाना अपना कर्त्तव्य मानता था, आज वह दफ्तर में न जाकर घर में ही रहना अपना कर्त्तव्य समझता है। कल तक जिस मनुष्य को नौ बजने पर दफ्तर की याद आती थी, आज उसी समय उसे डाक्टर की दुकान पर जाकर दवाई लाने के कर्त्तव्य की याद आती है क्योंकि स्थिति बदल गई है।

अतः यदि आज मनुष्य को यह निश्चयात्मक ज्ञान हो जाय कि वर्तमान स्थिति **धर्म-ग्लानि की स्थिति है,** अब सारी **सृष्टि पर संकट** बना है क्योंकि विश्व के **महाविनाश** के लिए ऐटम और हाइड्रोजन बम तथा अन्यान्य साधन तैयार हो चुके हैं और कि अब जो युग चल रहा है, वह **पुरुषोत्तम संगमयुग** है, जबकि हमें पुरुषोत्तम अर्थात् नर से श्री नारायण बनने का पुरुषार्थ करना चाहिए, तो क्या मनुष्य को परमपिता परमात्मा की स्मृति नहीं आयेगी? जब वह यह समझेगा कि अब हमें पवित्र और योगयुक्त करने के लिए परमपिता परमात्मा **शिव स्वयं** आये हैं, तो क्या वह यह बहाना बनायेगा कि–"मेरे पास समय नहीं, मुझे अपने गृहस्थ के कर्त्तव्यों से ही फुर्सत नहीं मिलती?" नहीं, नहीं, वह तो सोचेगा कि अब काल महाकाल सिर पर खड़ा है, अब सब-कुछ यहीं छोड़कर जाना है अपने धाम को। इसलिए वह अब अन्तिम समय को पहचानकर परमपिता परमात्मा ही को याद करेगा। वह समझेगा कि अब तो योग लगाना ही मेरा परम कर्त्तव्य है क्योंकि यह इसी पुरुषार्थ के लिए समय है। इस संगम को ही 'ब्रह्मामुहूर्त्त' और 'अमृतवेला' कहते हैं। अगर ये समय हाथ से चला गया फिर तो जीवन को अनमोल बनाने का और कोई अवसर ही नहीं रहेगा!

किसी मनुष्य को जब रेलगाड़ी द्वारा कहीं जाना होता है तो जैसे-जैसे रेलगाड़ी का समय निकट आता जाता है, वैसे-वैसे ही उसका ध्यान स्टेशन की तरफ जाता है। वह अपने सामान को लपेटने-समेटने लगता है, किसी को कहता है कि अब स्कूटर लाओ और किसी को कहता है कि अब सामान बाहर निकालो। यदि उससे कोई व्यक्ति किसी प्रकार की बेमौके की बात करता है तो वह उसे कहता है–"भाई, अब तो मैं जा रहा हूँ", क्योंकि उसका बुद्धि-योग अन्य सभी की याद से निकलकर स्टेशन और गाडी की तरफ चला जाता है कि कहीं गाड़ी छूट न जाय। इसी प्रकार

अगर आप किसी को यह निश्चयात्मक ज्ञान हो कि — "अब यह अन्तिम जीवन का भी अन्त आता है, इसमें भी अब योग ही सफल हो गया है, अब तो यहाँ परमधाम परमपिता परमात्मा के पास वे अपना शान्तिधाम में जाना है", तो उसे भी अवश्य ही परमपिता परमात्मा की, परमधाम की तथा अपने आत्म-स्वरूप की निरन्तर लगी रहे याद आयेगी ही।

परन्तु हमें इस दुनिया से छूट कर जाना तो है ही। सब कहते ही हैं कि यह एक मृत्युलोक है। तो इसे यहाँ तक बैठे योग ही करना है कि इस संसार से छुटकारा होगा ही। अब तो जाना ही है और जिसके पास जाना है, तो उसकी याद आनी भी स्वाभाविक ही है क्योंकि अब तो समय ही आने का आ पहुँचा है।

जिज्ञासु — दादा जी, मैं तो पहले-पहले ऐसा अनुभव कर रहा था कि जैसे मैं एक दम इस संसार से छूट गया हूँ और मैं सूक्ष्म देह से परमधाम के परमपिता परमात्मा शिव के पास जा रहा हूँ, अपना बापू देख रहा हूँ।

ब्रह्माकुमारी — तो देखो, ऐसे ही परमात्मा की स्मृति बनी रहनी चाहिए। इसी प्रकार और भी तरह-तरह की बातें होती हैं जिनसे मनुष्य जल्दी से ज्ञानस्वरूप परमपिता परमात्मा की स्मृति रखने का पुरुषार्थ करने लग सकती है।

४. अच्छी मत देने वाला, डूबने से बचाने वाला

दुनियादारी के लोग कहते हैं, संसार में हम देखते हैं कि अगर किसी मनुष्य को कोई व्यक्ति अच्छी राय-सलाह या मत देता है तो उसकी भी याद समय-समय पर अवश्य ही आती रहती है। उसके जीवन में जब भी कोई संकट या कोई समस्या आती है तो वह याद करता है कि "आज यदि वह व्यक्ति यहाँ होता तो मुझे अच्छी राय देता" [illegible]

[illegible]

'ईश्वरीय-मत', 'दिव्य-बुद्धि' आदि अनेक नामों से याद किया जाता है। परमपिता परमात्मा ही तो विषय-वैतरणी में डूबते हुए हम मनुष्यो को आकर निकालता है और अब निकाल भी रहा है। वही हम निर्धनो तथा दोनो को स्वर्ग का स्वराज्य देकर सदा के लिए सुखी बना रहा है। तब भला उस परमपिता परमात्मा की याद क्यो नहीं आयेगी?

५. परम सुन्दर

याद उसकी भी आँती है जो सुन्दर हो। सुन्दरता ऐसी चीज है जो मनुष्य को मोहित और मुग्ध कर देती है, उसके मन-मस्तिष्क को बार-बार अपनी ओर खीचती है। परन्तु-देह और भौतिक पदार्थो की सुन्दरता तो नश्वर है और दिनो-दिन क्षीण होने वाली है। उसे रोग, शोक, भोग और काल आदि नष्ट करने वाले है और उन पर लट्टू हुआ मनुष्य एक दिन सिर धुन-धुन कर रोता है। परन्तु पूर्ण सुन्दर तो एक परमपिता परमात्मा ही है। उसकी सुन्दरता की कला कभी घटती नही है। उसे तो लोग मानते ही ''सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्'' है। उसका तो नाम ही 'मन-मोहन' है। उसके तो एक क्षण के दर्शन के लिए धनी-भक्त लाखो रूपये देने के लिए तैयार होते है। अहा! उसकी मत पर चलने से तो नारी श्री-लक्ष्मी के समान सुन्दर और नर वैकुण्ठनाथ श्रीकृष्ण अथवा श्री-नारायण के समान सुन्दर बन जाता है! देवी-देवताओ की सुन्दरता से किसकी तुलना हो सकती है? वे तो अपने चेहरो को सुन्दर बनाने के लिए किसी कृत्रिम साधन-प्रसाधन का भी पयोग नही करते। आज के लोग यदि श्री लक्ष्मी-श्री नारायण,श्री सीता-श्रीराम अथवा वैकुण्ठ के किसी भी देवी-देवता के दिव्य-दर्शन कर ले, तो उनके तो होश ही उड़ जायेगे। तो ऐसा सुन्दर बनाने वाला, जो परमपिता परमात्मा है, उससे सुन्दर और कौन होगा? और फिर उससे तो स्वयं को आत्मिक और शारीरिक दोनो प्रकार की अपार सुन्दरता का वरदान मिलता है। यह सब जानकर मन, वचन और कर्म से उस पूर्ण सुन्दर तथा सुन्दर बनाने वाले परमपिय परमपिता परमात्मा को कौन बार-बार या लगातार याद नही करेगा?

अब मैने आपको जो पाच बाते समझाई है, उन पर आप गम्भीरता से विचार करेगे तो आप नष्टोमोहः और स्मृतिर्लब्धा हो जायेगे। जो मनुष्य परमपिता परमात्मा के दिव्य नाम, दिव्य रूप, दिव्य धाम तथा कर्त्तव्य आदि का परिचय प्राप्त करके कर्त्तव्य-कार्य करते हुए भी उन (परमात्मा) की स्मृति मे रहता है, वह कर्मयोगी है। 'कर्म-योग 'का अर्थ निष्काम होकर कर्म करना नही है बल्कि कर्म करते हुए भी योग अर्थात् परमात्मा से मन की लग्न लगाये रखना है।

[illegible]

[illegible] कर्मेन्द्रियों को संयम कर परमात्मा की याद

[illegible]

जिज्ञासु— [illegible]

याद करने का अभ्यास
क्या परमात्मा को याद करना कठिन है?

ब्रह्माकुमारी— [illegible]

उठाने लगता है तो बच्चा रोने लग जाता है। जब फिर वह कुछ बड़ा होता है और खेलने-कूदने लगता है तो उसकी बुद्धि माता-पिता से हटकर दोस्तों में जाती है। जब वह और बड़ा होता है तो उसकी बुद्धि मुहल्ले में एक-साथ खेलने वाले दोस्तों के अतिरिक्त सहपाठियों में भी जाने लगती है। जब पढाई पढ लेता है और उसका विवाह होता है तो अब उसका मन स्त्री में अधिक जाता है। फिर उसके कुछ बच्चे हो जाते हैं तो स्त्री से भी मन निकलकर अब बच्चों में अधिक जाता है। इससे स्पष्ट है कि एक की याद छोड़कर या कुछ कम करके दूसरे को याद करने का अभ्यास तो मनुष्य को जन्म-जन्मान्तर से ही है। एक से सम्बन्ध को हल्का करके दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध जोड लेना तो वह बहुत अच्छी तरह जानता है। किसी भी मनुष्य के लिए अपनी बुद्धि को एक सम्बन्धी से निकालकर दूसरे सम्बन्धी मे लगाने की तो टेव मनुष्य को पड़ी हुई है।

अत: अब बुद्धि को परमात्मा की याद मे लगाने की बात भला आपके लिए कठिन कैसे हुई? दुनियावी सम्बन्धियो मे, जो कि अल्पकाल के लिए मिले है उनमे बुद्धि लगाना भला आपको किसने सिखाया? माता-पिता, भाई बहिन सखा मित्र और शिक्षक आदि को याद करना तो आपको स्वत ही आ गया उनकी ओर तो आपका स्नेह स्वत ही जाता है, परमात्मा रूप माता-पिता को याद करने की आप विधि पूछना चाहते हैं! यह कैसी अजीब बात है! जैसे बच्चा अपनी बुद्धि अथवा याद को माता-पिता से निकालकर सहपाठियो या दोस्तो मे लगाता है, या जैसे स्त्री अपने मन को माता-पिता की याद से निकालकर पति से मन की याद का नाता जोडती है, वैसे ही आपको मन या बुद्धि को देह और देह के सगे सम्बन्धियो से मोडकर अथवा स्थानान्तरित (Transfer) करके एक परमपिता परमात्मा मे लगाना है। इसमे क्या कठिनाई है? कठिनाई तो उसके लिए है जो परमात्मा को जानते ही नही, जिन्हें उसके दिव्य नाम, रूप, धाम और सम्बन्ध आदि का ज्ञान ही नही या जो परमात्मा को नाम-रूप से न्यारा अथवा सर्वव्यापक मानते हैं। अब आपको तो परमात्मा का पूर्ण परिचय तो दे ही दिया गया है, अत कर्मेन्द्रियो को समेटकर, स्वय को देह से न्यारा, आत्मा निश्चय करके बैठो तो आत्मा को परमपिता की याद आयेगी। आप जब तक स्वय देह की स्थिति अथवा स्मृति म टिके रहोगे तब तक आपको देह और देह के संसार अथवा सम्बन्धियो की याद आयेगी, परन्तु जब आप स्वयं को 'आत्मा' निश्चय करोगे तब तो स्वत ही आत्मा के परमपिता, परम शिक्षक, परम सद्गुरु परमात्मा शिव ही की याद आयेगी।

जिज्ञासु—मुझे यह बात अच्छी लगी कि जब तक देह की स्थिति और स्मृति में रहेंगे

...[illegible] रही, [illegible]

[illegible] की याद [illegible] और [illegible] भी [illegible]
[illegible] परमपिता परमात्मा की स्मृति [illegible] परन्तु [illegible]
[illegible] और [illegible]
[illegible] करें?
[illegible]

योग अथवा याद की विधि

[illegible] — [illegible]
[illegible]
[illegible] आपका मन [illegible]
[illegible] है। [illegible]
[illegible] जो परमपिता परमात्मा का नाम है। [illegible] और
[illegible] जो परमपिता परमात्मा शिव है उनके [illegible] आपका मन [illegible]
जो ज्योति-बिन्दु परमात्मा शिव है [illegible] नहीं [illegible]
उनका सम्बन्ध भी। तो [illegible] किसी लौकिक सम्बन्धी [illegible]
या याद [illegible], बल्कि [illegible] आपका [illegible] परमात्मा की [illegible] स्मृति [illegible]
[illegible] पारलौकिक परमपिता परमात्मा की [illegible] स्मृति [illegible] — मैं आत्मा हूँ [illegible]
[illegible]। आपकी बुद्धि में [illegible] प्रकार की स्मृति [illegible] परमपिता शिव ज्योति-बिन्दु है [illegible]
परमात्मा शिव की सन्तान हूँ। परमपिता शिव [illegible] और शान्ति [illegible]
[illegible] कि [illegible] और शान्ति [illegible]
[illegible] हूँ। परमपिता परमात्मा [illegible]
आत्मा भी [illegible] सागर, [illegible] और
शान्ति के सागर [illegible] आनन्द के सागर [illegible] प्रेम के सागर, [illegible]
पतित-पावन है — [illegible] सर्वथा [illegible]
[illegible] कि [illegible] उनका यथार्थ परिचय मिला [illegible]

[illegible]

करने लगेगा। उसे अनुभव होगा कि दिनों-दिन उसके पुराने और गन्दे संस्कार ढीले पड़ रहे हैं अथवा उसका पीछा छोड़ते जा रहे हैं। योग-अवस्था में आत्मा को ऐसा भी लगेगा जैसे कि लाईट और माईट अर्थात् प्रकाश और शक्ति के फव्वारे में वह नहा रही है, अथवा परमप्रिय परमपिता परमात्मा शिव से उसे जो प्रकाश और शक्ति प्राप्त हो रही है, वह उसके माध्यम से सारे संसार में फैल रही है।

शुरू-शुरू में ईश्वरीय स्मृति के अभ्यास के समय दूसरे-दूसरे संकल्प आयेंगे क्योंकि जन्म-जन्मान्तर से मनुष्य का मन भटका हुआ है, निरंकुश हो चुका है और उसे इधर-उधर भटकने का अभ्यास हो गया है। परन्तु यदि आप उपर्युक्त रीति से परमात्मा को याद करेंगे तो वे संकल्प टल जायेंगे। अशुद्ध संकल्पों को तो ज्ञान से अथवा शुद्ध संकल्पों द्वारा ही काटा जा सकता है। अतः आप व्यर्थ संकल्पों को परमपिता परमात्मा की याद के इन संकल्पों से ही काट सकते हैं। कभी भी जब कोई व्यर्थ संकल्प-विकल्प मन में आयें तो इस चिन्ता में न पड़िए कि व्यर्थ संकल्प आ रहे हैं, न ही उनकी रौ में बह जाइए, बल्कि आप परमप्रिय परमपिता परमात्मा के गुणों, कर्त्तव्यों इत्यादि की याद के संकल्प चलाने लग जाइए। इससे स्वतः ही आपके दूसरे संकल्प रुक जायेंगे और कुछ अभ्यास के बाद आपकी स्मृति स्वाभाविक और निर्विघ्न तथा निर्विकल्प होती जाएगी।

योगी के लिए नियम

यह जो हमने परमपिता परमात्मा का परिचय दिया है तथा उनकी आनन्दायक स्मृति का अभ्यास करने की बात कही है, इससे लाभ वही उठा सकेगा जो नियमों का पालन करता होगा। जो इन नियमों का पालन नहीं करेगा उसे योगी जीवन का सच्चा सुख, आत्मा-परमात्मा के मिलन का आनन्द, पवित्र जीवन का फल–'शान्ति'–और ज्ञान के द्वारा अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति का अनुभव नहीं होगा। अतः योग में अडोल स्थिति को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को चाहिए की वह नियमों का पालन करे।

ब्रह्मचर्य

उनमें सबसे ज़रूरी और लाभकारी है–ब्रह्मचर्य। 'काम' मनुष्य का महावैरी है, वह योगी का परमशत्रु है। कामी मनुष्य तो देह में आसक्त होता है और विषय-विकार के पीछे भागता है, परन्तु योगी तो देह से न्यारा होकर एक अशरीरी परमपिता परमात्मा ही को पूरे मन से चाहता है। उसे तो काम विकार 'नरक का

[illegible] मालूम होता है और वह उसे विष के समान मानता है तथा उनके संकल्प-मात्र को भी अपवित्र मानता है।

अब जबकि इस सृष्टि के महाविनाश में थोड़ा ही समय शेष रह गया है और यों भी यह विषय-विकार छूटने ही हैं, यह देह और देहधारी हमसे अलग होने हैं ही और हमको अब सतयुगी सृष्टि (स्वर्ग) में जाना है, जहाँ कि काम विकार होता ही नहीं, तो क्यों न हम स्वयं ही इनको छोड़कर स्वर्ग के देव-पद के अधिकारी बनें?

अब परमपिता परमात्मा शिव कहते हैं कि—"वत्स, जन्म-जन्मान्तर तो तुम विषय-भोग करते रहे, क्या अब मेरी खातिर भी तुम इस अंतिम जन्म में शेष थोड़े समय के लिए, बस दो वर्षों के लिये भी पवित्र नहीं रह सकते? हे वत्स, क्या तुम्हें काम रूप मादक विष ही अच्छा लगता है कि अब तुम मुझसे ज्ञानामृत पीकर अमर पद को भी प्राप्त नहीं करना चाहते? वत्स, अब मैं तुम्हें विषय-वैतरणी से [illegible] इस शोक-सागर से निकालने और तुम्हें पतित से पावन बनाने आया हूँ। तुम ही तो मुझे जन्म-जन्मान्तर बुलाते थे और कहते थे कि—'विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा'। परन्तु अब जब मैं इस कलियुगी सृष्टि रूपी वेश्यालय से निकाल कर सतयुगी पावन सृष्टि रूप शिवालय में ले जाने के लिये आया हूँ, तो अब भी क्या तुम गन्दगी को, दुःख देने वाली वृत्ति-दृष्टि और संस्कार को नहीं छोड़ोगे? वत्स, जन्म-जन्मान्तर तो तुम विष ही का वर्ता लेते आये हो, अब तो [illegible] परमपिता परमात्मा से पवित्रता का वर्ता ले लो! देखो, मैं अब [illegible] सतयुगी सृष्टि स्थापन करने आया हूँ, आप भी पवित्र रहकर मुझे सहयोग दो। [illegible] स्वर्ग का मालिक बनाऊँगा। वत्स देखो, मौत सामने खड़ी है, यह [illegible] जायगा और तब पीछे पछताने से कुछ न होगा। वत्स, अब सृष्टि [illegible] का समय (Emergency-period) है, इसलिए मेरी यह आज्ञा (Ordinance) है कि अब तुम काम विकार बन्द करो। वत्स याद रखो कि मैं तुम्हारा बाप हूँ।"

जबकि परमपिता परमात्मा की ऐसी आज्ञा है तो हमें अवश्य ही उनका पालन [illegible] भी सरकार भी संकटकालीन स्थिति (Emergency-Period) में कोई आज्ञा (Ordinance) देती है तो सभी नागरिकों को अनिवार्य रूप से उसका पालन करना होता है, तो अब जबकि परमपिता परमात्मा ने यह [illegible] घोषित की है तो क्या हमें उसका पालन नहीं करना चाहिए? क्या केवल [illegible] स्वर्ग के राज्य-भाग्य का अधिकारी नहीं बनना चाहिए और [illegible] करनी चाहिए?

ब्रह्मचर्य के बिना तो मनुष्य दूसरे विकारों पर विजय प्राप्त करने की शक्ति भी प्राप्त नहीं कर सकता और ईश्वरीय मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का सामना भी नहीं कर सकता। अतः हर हालत में हमें मन्सा, वाचा और कर्मणा से ब्रह्मचर्य का पालन तो करना ही चाहिए।

आहार की शुद्धि

ब्रह्मचर्य के पालन के अतिरिक्त, आहार की सात्त्विकता योगी के लिए परम आवश्यक है। अन्न का तो मन पर प्रभाव पड़ता ही है। उक्ति भी है कि "जैसा अन्न वैसा मन, जैसा पानी वैसी वाणी।" जबकि हम मनुष्य से देवता बनने का पुरुषार्थ कर रहे हैं तो हमारा आहार भी तो पूरी तरह शुद्ध होना चाहिए। क्या भक्त लोग देवताओं को अथवा परमात्मा को प्याज़ और लहसुन का, माँस और अण्डों का या बीड़ी-सिगरेट का भोग लगाते हैं? नहीं, नहीं, वह कभी ऐसा संकल्प भी नहीं कर सकते। अतः हमें भी अब यह आसुरी खान-पान अथवा मलेच्छों का खान-पान छोड़कर शुद्ध भोजन करना चाहिए क्योंकि हम शुद्ध बनने का पुरुषार्थ कर रहे हैं। हमें तामसिक पदार्थों से तो परहेज करना है ही, परन्तु इसके अतिरिक्त, हमें ऐसे व्यक्ति के हाथों से बना भोजन भी नहीं लेना चाहिए जो कि अज्ञानी हो, विषय विकारों में वर्त्तता हो और योग-युक्त न हो। अहा, अगर हम योग-युक्त और पवित्र जीवन वाले किसी व्यक्ति द्वारा बना भोजन करेंगे तो हमारी योग-समाधि अर्थात् [illegible] -स्मृति ऐसी निर्विकल्प और अडोल होगी कि बहुत आनन्द आयेगा! शुद्ध आहार से हमारी मानसिक अवस्था और आत्मिक स्थिति इतनी पवित्र, शक्तिशाली, शान्त और मधुर होती जायेगी कि जीवन बड़ा अच्छा बनता जाएगा।

प्रतिदिन ज्ञान-स्नान

योग में स्थिरता और प्रगति के लिए प्रतिदिन ज्ञान-स्नान करना भी आवश्यक है क्योंकि जैसे दीपक में बत्ती के अतिरिक्त घी भी आवश्यक है वैसेही योग अर्थात् याद रूपी लौ जगाने के लिए ज्ञान रूपी घृत भी जरूरी है। इसलिए, यहाँ पर ईश्वरीय विद्या के विद्यार्थी प्रतिदिन अमृतवेले आकर ज्ञानामृत पीते हैं। ज्ञान द्वारा ही मनुष्य के संशय छिन्न-भिन्न होते हैं, आत्मा का निश्चय प्रबल होता है, शुद्ध संकल्प दृढ़ होता है और वह बुराइयों से बची रहती है। इसलिए मनुष्य को प्रतिदिन ज्ञान-स्नान अवश्य करना चाहिए।

अच्छा संग

संग का भी मनुष्य के मन पर प्रभाव पड़ता है। संग-दोष बहुत बड़ा दोष [illegible] गया है। अतः मनुष्य को चाहिए कि जो लोग ज्ञान की चर्चा करने वाले हों, योगाभ्यास में रुचि रखते हों, प्रभु-प्रेमी हों और सात्विकता की ओर बढ़ने की चाहना रखने वाले हों, उनसे ही सम्पर्क रखें। आप, लोगों से जो कार्य-व्यवहार रखना आवश्यक हो, उनमें लगे रहने पर भी उनकी गन्दी चर्चा व व्यर्थ बातों से [illegible] न लें बल्कि अपने मन का संग सत्य-स्वरूप परमपिता [illegible] से ही रखें। वरना योग में बैठने पर भी दिन-भर की सुनी हुई खराब बातें [illegible] विघ्न डालेंगी।

निरन्तर स्मृति का अभ्यास

योग में उच्च स्थिति प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि [illegible] कार्य-व्यवहार में लगे होने पर भी बीच-बीच में समय निकालकर [illegible] में एक-टिक होना चाहिए और परमपिता परमात्मा की स्मृति का अभ्यास करना चाहिए। और हम संसार में देखते हैं कि अगर डाक्टर किसी रोगी को कहता है कि—"हर तीन घण्टे के बाद यह दवाई लेना" तो वह [illegible] न हों, तो भी रोग से निवृत्त होने की इच्छा से डाक्टर की [illegible] है। इसी प्रकार अब जबकि हम जन्म-जन्मान्तर के [illegible] छुटकारा पाना चाहते हैं तो हमें भी बार-बार, हर घण्टे-दो घण्टे में [illegible] तीन-चार मिनट तो परमात्मा की स्मृति में स्थित होने का अभ्यास करना ही चाहिए।

पवित्रता और दिव्यगुणों की धारणा

यदि हम बार-बार योग में स्थित होने का अभ्यास नहीं करेंगे [illegible] स्थिति परिपक्व नहीं हो सकेगी। इसलिए [illegible] नम्रता, सहनशीलता, गम्भीरता, धैर्य, [illegible] मन-वचन और कर्म की पवित्रता आदि-आदि दिव्यगुणों [illegible] इन दिव्यगुणों को जो अपने जीवन में [illegible] जीवन और व्यवहार में भी उतना ही महत्व [illegible]

इन सभी बातों को समझते हुए अब योग [illegible] तथा जीवन को [illegible]

जिज्ञासु–योग के विषय में आज यह सारी चर्चा सुनकर मेरा मन अति हर्षित हो रहा है, मुझे बहुत शान्ति मिली है। केवल एक बात और बता दीजिए कि कर्म करते हुए योग तो लगाना ही है परन्तु जब हम विशेष तौर पर योग में बैठें तो क्या किसी विशेष आसन पर बैठना है?

ब्रह्माकुमारी–नहीं, नहीं, क्या आप लौकिक पिता को जब-कभी याद करते हैं तो किसी विशेष आसन पर बैठते हैं? क्या आप जब अपने किसी मित्र को याद करते हैं तो आँखें बन्द कर लेते हैं? कभी भी नहीं। इसी प्रकार, जिस तरह भी आप सहज। बैठ सकें, वैसे बैठकर, बड़े प्रेम से, निश्चय से, लग्न से, पहचान से उस परमपिता परमात्मा को याद करो। बैठक तो मन की ठीक होनी चाहिए। अगर शरीर की बैठक ठीक हो परन्तु मन भाग रहा हो तो भी क्या लाभ? बाहर से आँखें बन्द हों और अन्दर मन सारी दुनिया में घूम – घूमकर देखता रहे तो उससे भी क्या फायदा? बनावटी-पन छोड़कर, जैसे लौकिक पिता को सरलता से याद करते हो वैसे ही उस पारलौकिक परमपिता को याद करो। बल्कि, यदि कोई योग-युक्त व्यक्ति आपके सम्मुख बैठा हो तो उससे दृष्टि भी लो क्योंकि योग-निष्ठ आत्मा की दृष्टि से आपको भी आत्म-स्थित होने में सहायता मिलेगी।

इस योग के नाम

चलते-फिरते, कर्म करते भी ईश्वरीय स्मृति का अभ्यास कर सकते हैं, इसलिए इस योग का नाम '**कर्मयोग**' भी है। इसे ही **ज्ञानयोग** भी कहते हैं क्योंकि यह आत्मा, परमपिता परमात्मा तथा सृष्टि - चक्र के आदि-मध्य-अन्त के ज्ञान पर आधारित है। इसी का एक नाम **बुद्धियोग** भी है क्योंकि बुद्धि द्वारा परमपिता परमात्मा की स्मृति में स्थित होना होता है। यही योग **राजयोग** भी है क्योंकि इसका अभ्यास करने से मनुष्य स्वर्ग के दैवी स्वराज्य के पद को प्राप्त होता है अथवा "राजाओं का राजा" बनता है। इसे 'राजयोग' इस कारण भी कहा जाता है कि यह सभी योगों का राजा अर्थात् सभी से उत्तम योग है और राजा जिन्हें कि राज्य का कार्य-व्यवहार करना पड़ता है, वे भी इसका अभ्यास सरलता से कर सकते हैं। यही योग '**सहजयोग**' भी कहलाता है क्योंकि इसके लिए आसन, प्राणायाम, हठ-क्रिया आदि की आवश्यकता नहीं है। इसी योग का एक नाम 'संन्यास योग' भी है क्योंकि इसके अभ्यास के लिए मन से(न कि स्थूल रीति से) सारी सृष्टि का संन्यास करना पड़ता है।

प्रश्न

१. योग किसे कहते हैं?
२. योग में स्थित होने की विधि क्या है?
३. योग के लिए किस सूक्ष्म पुरुषार्थ की आवश्यकता है?
४. मनुष्यात्माओं के लिए परमपिता परमात्मा की क्या आज्ञा है?
५. परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ने पर क्या प्राप्त होता है?
६. योग में मुख्य कौनसी पाँच बातें सहायक हैं?

ईश्वरीय मत और [illegible] [illegible] में

अन्तर

ईश्वरीय मत से [illegible]

और मैं स्वयं को अलग तथा निर्बल मानकर बैठ जाता था, और मेरे श्वास, मेरा समय व्यर्थ जाता था, अब ऐसा नहीं होता। इससे मैं स्वयं में शान्ति का अनुभव करता हूँ, मैं यही सोचता हूँ कि मैं तो हूँ ही शान्तिस्वरूप, मैं ही तो मालिक हूँ, मैं अशुद्ध संकल्प न करना चाहूँ तो मेरी इच्छा के बिना यह चल कैसे सकते हैं? अपने-आपसे इस प्रकार बातें करने से वे अशुद्ध संकल्प रुक जाते हैं।

आत्मिक दृष्टि

इसके अतिरिक्त पहले मैं मानता था कि सभी में एक ही आत्मा है, सभी भगवान् के ही रूप हैं। उस मन्तव्य के कारण मेरी बुद्धि एक परमात्मा की ओर नहीं जाती थी क्योंकि भगवान् को मैं कोई अलग तो मानता ही न था। अब जब आपने यह समझाया कि सभी भगवान् के रूप नहीं हैं बल्कि सभी शरीरों में अलग-अलग अनादि-अविनाशी आत्माएं हैं और सभी परमात्मा की सन्तान हैं, परमात्मा इन सभी से अलग है, तब से लेकर मैं सबको आत्मा की ही दृष्टि से देखते हुए "भाई-भाई" मानता हूँ और सबको एक ही परमधाम का वासी समझता हूँ। अब आत्मा-आत्मा आपस में भाई-भाई मानने से मेरा मन स्वाभाविक रीति से बाप अर्थात् सर्व आत्माओं के परमपिता परमात्मा शिव की ओर भी जाता है क्योंकि अब उसका अलग और स्पष्ट परिचय मिलता है।

तीन लोक के चित्र को समझने से लाभ

ब्रह्माकुमारी—आत्मा के धाम परलोक का पता लगने से क्या अब आपका मन वहाँ जाता है या नहीं जहाँ से कि हम सभी आये हैं? क्या इसके फलस्वरूप इस संसार से आपके मन की आसक्ति का लगाव मिटता जाता है?

जिज्ञासु—जी हाँ, बहन जी, यह भी लाभ हुआ है। अब मैं इस संसार में रहते हुए, कर्त्तव्य-कार्य करते हुए भी स्वयं को इससे न्यारा अनुभव करने लगा हूँ। अब मेरी बुद्धि में यह स्मृति रहती है कि यह संसार तो मुसाफ़िरखाना है, यह तो "चिड़िया रैन बसेरा है," मुझे जाना तो परमधाम है।

ब्रह्माकुमारी—अच्छा, और क्या लिखा है?

मन की एकाग्रता

जिज्ञासु—बहन जी, आपने दूसरे दिन परमात्मा का परिचय दिया था। मुझे परमात्मा के नाम, रूप, धाम आदि का परिचय मिलने से यह लाभ हुआ है कि अब

[illegible] मन को ठिकाना मिल गया है। पहले मैं शास्त्रों के आधार पर [illegible] नाम, रूप और धाम से न्यारा, एक सर्वव्यापक तत्त्व मानता था। तब [illegible] कोई साधन न था। कोई कहता था कि तुम नासिका के अग्र-भाग [illegible] दृष्टि को एकाग्र करो, कोई कहता था भृकुटि पर या किसी मूर्त्ति पर, [illegible] शरीर-भाग हैं, इन पर टिकाने का क्या लाभ? अब तो प्रभु का परिचय [illegible], अब मैं अपने मन को परमधाम के वासी, ज्योति-बिन्दु, सदा-मुक्त और [illegible] के सागर, कल्याणकारी परमपिता परमात्मा की स्मृति में थोड़ा-बहुत [illegible] हूँ। इससे मन को शान्ति मिलती है।

अपार खुशी

[illegible] कि परमात्मा के साथ हम आत्माओं का [illegible] सम्बन्ध है; बहन जी, इससे तो मुझे बेहद खुशी मिली है। [illegible] कि—"हे प्रभो, मैं तेरा दास हूँ, मैं पापी [illegible] हुए भी मैं गन्दा बना हुआ था। मैं [illegible] कृपा करो।" इससे अल्पकाल [illegible] अब तो मुझे यह नशा रहता है कि [illegible] शान्ति के सागर परमपिता [illegible] अब मैं बुरे कर्मों से भी बचा [illegible] पिता का बच्चा हूँ, मैं [illegible] नहीं होने चाहिएँ। पहले तो हम [illegible] अब हमें यह नशा रहता [illegible] सुख-शान्ति नहीं, सर्वशान्ति पर [illegible] रहती है [illegible] है।

[illegible] हुआ?

[illegible]

[illegible]

[illegible] इस [illegible] को इस कार्य में सहयोग देना है, तथा अपना सौभाग्य बनाना है। [illegible] मैंने भी अब पवित्रता का व्रत लिया है और अब मैं योग का भी अभ्यास कर रहा हूँ। सृष्टि की घड़ी में क्या बजा है?—अब यह जानकर मैं जाग गया हूँ। पहले हम मानते थे कि कलियुग [illegible] की अवस्था है, इसलिए हम अज्ञान निद्रा में सोये पड़े थे परन्तु अब मालूम हुआ है कि कलियुग का थोड़ा ही समय शेष बचा है! यह जानकर [illegible] पुरुषार्थ करते हैं।

[illegible]—सृष्टि-रूपी विराट नाटक को जानकर यह भी समझा है कि हम सभी [illegible] आत्माएं इस विराट पृथ्वी-मंच पर अनादि अविनाशी एक्टर हैं जो [illegible] अपना पार्ट करते हैं और कि अब सृष्टि-नाटक का अन्त आ पहुंचा है, [illegible] हम सभी को यह शरीर रूपी वेश (Dress) यहाँ उतारकर, मंच छोड़कर [illegible] परमधाम जाना है? इसके अतिरिक्त स्वदर्शन चक्र का अर्थ समझकर अब [illegible] बनने का भी पुरुषार्थ कर रहे हो ना?

[illegible]—[illegible] जी, यह भी समझा है और इसका भी पुरुषार्थ कर रहा हूँ।

[illegible]—यह समझकर क्या आपको अब देह रूपी वेश से अपने को [illegible] और परमधाम जाने की बात याद रहती है? दूसरे इस सृष्टि-नाटक [illegible] इस विराट नाटक के नायक (Hero), नायिका (Heroine), [illegible] (Actors) तथा इनकी पुनरावृत्ति के रहस्य को कैसे समझा?

[illegible]—[illegible] यही समझा कि प्रजापिता ब्रह्मा और जगदम्बा सरस्वती, [illegible] 'आदम' और 'हव्वा' कहते हैं, इसके नायक और नायिका [illegible] श्रीराम, इब्राहिम, बुद्ध, [illegible] इत्यादि इसके मुख्य अभिनेता हैं [illegible] पुनरावृत्त होता है। इससे मैंने यह [illegible] यदि मैं श्रेष्ठ कर्म करूँगा तो हर [illegible] पार्ट निश्चित हो जायेगा।

सृष्टि-रूपी वृक्ष को समझने से लाभ

[illegible]

और विविधता तो है ही। अतः दूसरों के भिन्न संस्कारों को देखकर और अपने से मत न मिलता देखकर, अब मैं क्रोध नहीं करता बल्कि शान्त रहता हूँ। अब मैं इस विराट रचना को देखकर साक्षी हो खुश रहता हूँ। अब मुझे यह भी मालूम हुआ है कि यह सृष्टि एक विराट नाटक है, इसे देखकर साक्षी हो खुश रहता हूँ। अब पुराने सृष्टि-रूपी वृक्ष का कलम लग रहा है। यही अमृतवेला है और यही ब्रह्ममुहूर्त्त है। अतः अब मैं नित्य ज्ञानामृत पिऊँगा।

अब मैंने 'शिवरात्रि' के रहस्य को भी समझा है। यह जो कलियुग के अन्त और सतयुग के आदि का संगम अभी चल रहा है, जबकि परमपिता परमात्मा शिव, अवतरित हुए हैं, यही वास्तव में शिवरात्रि है। हमें अब आत्मा को जागृत करना है शिवरात्रि के अवसर पर यही वास्तविक 'जागरण' है। हमें ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना है, यही सच्चा व्रत है।

बहन जी, पहले हम हर वर्ष शिवरात्रि का त्यौहार मनाते तो थे परन्तु परमपिता परमात्मा शिव कब आते हैं, 'रात्रि' का क्या अर्थ है, शिवरात्रि का क्या महात्म्य है? हम इसके बारे में यथार्थ कुछ भी नहीं जानते थे। साधु-संन्यासी तो हमें उल्टा मत देते थे; वे हमें कहते थे कि–शिवोऽहम् के मन्त्र का जाप करो। अब हमको मालूम हुआ है कि मनुष्य को शिव मानना महान् भूल है। शिव तो सर्व आत्माओं के परमपिता, परमशिक्षक, परमसद्गुरु और मुक्ति-जीवनमुक्ति के दाता हैं।

ब्रह्माकुमारी–पाँचवें दिन ८४ जन्मों की कहानी सुनाई गई थी, उससे क्या रहस्य ग्रहण किया?

८४ जन्मों की कहानी के ज्ञान से लाभ

जिज्ञासु–पाँचवें दिन आत्मा के ८४ जन्मों की जो कहानी आपने सीढ़ी के चित्र की सहायता से समझाई थी, उससे मुझे 'सत्यनारायण की सच्ची कथा' का, 'अमर-कथा' का और 'सच्चे व्रत' का ज्ञान हुआ। उससे मैंने यह समझा कि द्वापरयुग से लेकर आत्मा मे गिरावट आती गई और वह विषय विकारों में फँसकर विकर्म करती रही है। अतः अब आत्मा पर ६३ जन्मों के विकर्मों का बोझ है। अब वापस परमधाम में जाना है परन्तु इन विकर्मों को दग्ध किए बिना और पवित्र हुए बिना नहीं जा सकते। आपने यह भी बताया था कि अब इसी एक ही जन्म में योग द्वारा विकर्मों को दग्ध करके हम मुक्ति की और जीवनमुक्ति की प्राप्ति कर सकते हैं।

पहले हम यह मानते थे कि ८४ लाख योनियाँ भोगनी पड़ती हैं और अनेकानेक

जन्म धारण करने के बाद ही कहीं परमात्मा की प्राप्ति होती है और मनुष्य को मोक्ष मिलती है। परन्तु अब हमको यह जानकर खुशी हुई कि यह वर्तमान जन्म अंतिम जन्म है और अब हम एक ही जन्म में योग के पूर्ण अभ्यास से हम [illegible] कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त हमें यह भी मालूम हुआ कि मनुष्यात्मा ८४ लाख योनियाँ **नहीं लेती** बल्कि सारे कल्प में **८४ जन्म** मनुष्य तन में ही लेती है। इससे [illegible] से खुशी हुई। अब यह जानकर कि हम मनुष्य से देवता बन सकते हैं [illegible] [illegible] धारण करके सूर्यवंशी देवता पद की प्राप्ति के लिए [illegible]

धर्म के नाम को और गीता के भगवान् को जानने से [illegible]

[illegible] जी, छठे दिन आपने बताया था कि हमारे धर्म का [illegible] 'देवी-देवता धर्म' है और इसकी स्थापना [illegible] परमात्मा शिव ने सत्ययुग में की थी। [illegible] नाम 'हिन्दू-धर्म' है और हम अपने धर्म के [illegible] अब 'देवता-धर्म' को जानकर मैं अपने [illegible]

गीता के भगवान् के यथार्थ परिचय से आध्यात्मिक उन्नति

जिज्ञासु—बहन जी, अब हमें यह मालूम हुआ कि श्रीमद्भगवद्गीता के आदि वक्ता अव्यक्त मूर्त्त, बीजरूप परमपिता परमात्मा शिव ही हैं और 'मन्मनाभव' आदि महावाक्य उन्हीं के हैं। इस रहस्य को जानने मे अब मैं किसी देहधारी मे योग नहीं लगाता बल्कि ज्योतिस्वरूप परमात्मा शिव ही को याद करता हूँ। पहले मैं श्री कृष्ण अथवा श्री नारायण को 'भगवान्' मानता था। अब मैं उन्हें श्रेष्ठ देवता मानता हूँ और उन्हें जीवन का लक्ष्य मानकर उनके समान अपने जीवन मे भी दैवी-गुण धारण करने का पूरा-पूरा पुरुषार्थ करता हूँ। बहन जी, गीता के भगवान् का वास्तविक परिचय प्राप्त करने से तो अब गीता का सारा अर्थ स्पष्ट हो गया है।

इसके अतिरिक्त आपने यह भी बताया था कि श्री कृष्ण के बारे मे यह जो कहा गया है कि उसकी १६,१०८ पटरानियाँ थी आदि-आदि, ये सब श्री कृष्ण पर निराधार कलक हैं। पहले हमारे मन मे प्रश्न उठा करता था कि श्रीमद्भगवद्गीता मे जो लिखा है कि—'काम महाशत्रु है।' तब भला श्री कृष्ण की इतनी पटरानियाँ और हजारों बच्चे कैसे होगे? अब बात समझ मे आई है कि १६, १०८ का वास्तविक रहस्य कुछ और ही है। ये बाते जानकर अब देवताओ की निन्दा की बाते जो हमारे मन मे थी वह निकल गई है और देवताओ के प्रति अब हमारी श्रद्धा भी बढ़ी है और प्रेम भी बढा है।

माला के १०८ मणकों के रहस्य को जानने से लाभ

ब्रह्माकुमारी—१०८ मणको की माला का जो रहस्य आपको पिछले दिन समझाया गया था उससे आपने क्या प्रेरणा ली?

जिज्ञासु—हाँ, उसे समझकर मन मे यह निर्णय किया है कि अब मन का मणका फेरकर मैं स्वयं चेतन मणका बनूँगा और माया पर विजय प्राप्त करने के लिए पूरी लगन से पुरुषार्थ करूँगा। बहन जी, मैं भी पूर्णत विजयी वत्स बन सकता हूँ ना?

ब्रह्माकुमारी—हाँ, क्या नही। पुरुषार्थ से क्या नही हो सकता? जब आप पूरी लगन से पुरुषार्थ करोगे तो इच्छानुसार प्राप्ति भी कर सकते हो। सारा आधार योगाभ्यास और दिव्यगुणो की धारणा पर ही तो है। आपने सातवे दिन 'योग' के बारे मे तो स्पष्ट समझा है ना?

[illegible] ने ईश्वर का [illegible] है [illegible] है

जिज्ञासु—[illegible]! आपने बताया था कि [illegible] परमपिता परमात्मा की स्मृति [illegible] करना ही योग है। बहन जी, पहले हम योग को एक हौआ मानते थे [illegible] संन्यास करके जंगल में [illegible] थे कि शायद इसके लिए घर-बार का [illegible], प्राणायाम, आसन, हठ-क्रियायें आदि करनी पड़ेंगी। इसलिए [illegible] छोड़ देना था। परन्तु मन में यह उत्सुकता तो रहती [illegible] योगी बनकर योग का आनन्द नहीं ले सकेंगे? बहन जी [illegible] योग आदि-आदि की कठिन बातें सुनकर योग के निकट [illegible] और हम सोचते थे कि क्या अपने परमपिता [illegible] इतना कठिन मार्ग है? अब आपने योग का जो अर्थ बताया है [illegible] उसका अभ्यास करने में मन भी लगता है [illegible] अभ्यास करता हूँ, उतना और भी मन उस ओर खिंचता [illegible] है।

[illegible] के योगों का नाम सुनते थे। 'कर्म योग' [illegible] अनेक नाम गीता में भी पढ़े थे। परन्तु बहन [illegible] है और वास्तविक योग का [illegible] है [illegible] कि योग का लक्ष्य क्या है, योग [illegible] इन सभी बातों का स्पष्टीकरण [illegible] मुझे बहुत खुशी मिलेगी [illegible] जीवन में पवित्रता और [illegible]

[illegible] शुरू होने से पहले [illegible] दृष्टिकोण था? और अब [illegible]

[illegible] योगी द्वारा की [illegible]

[illegible] अनुभव के अपने [illegible]

[illegible] विश्लेषण [illegible]

[illegible]

सीखते भी तो ईश्वरीय विद्या हैं, वह भी तो अलौकिक है ना? तो बहन जी, यहाँ जो व्यक्तिगत रीति से पढ़ाया जाता है, एक जिज्ञासु पर इतनी मेहनत की जाती है, उसके प्रश्नों का हल किया जाता है—यह तो बहुत ही अच्छा है। इससे बात बुद्धि में बैठ जाती है और जीवन में परिवर्तन भी आता है। हम समझते हैं कि कोई हमें पूछने वाला, कोई हमारा टीचर, हमारे ऊपर भी कोई है। इसलिए अपने ऊपर ध्यान रहता है कि कल फिर हमसे पूछा जाएगा कि—'क्या समझा, किस स्थिति में रहे, कोई भूल तो नहीं की, शिव परमात्मा की याद में तो रहे', आदि-आदि। और, जो हमारे आगे बढ़ने में कठिनाइयाँ हों, आध्यात्मिक उन्नति करने में विघ्न आयें, उन्हें हटाने या पार करने के लिए हमें मार्ग प्रदर्शना भी तो मिलती है। इससे उन्नति होना स्वाभाविक है। इसलिए मैं एक सप्ताह में भी इतना महान् अन्तर अनुभव करता हूँ।

दूसरी बात यह कि यहाँ जो आत्मा का, परमपिता परमात्मा का, सृष्टि-चक्र का, योग आदि का ज्ञान मिलता है उससे आत्मा संतुष्ट हो जाती है। बहन जी, मैंने पहले अनेक शास्त्र पुराण आदि पढ़े और उनके पढ़ने में और भी उलझन बढ़ती गयी। अनेक स्थानों पर जाकर उपदेश भी सुने परन्तु सभी बातें स्पष्ट नहीं हुईं। इसलिए मैं कभी किसी सभा में और कभी किसी व्याख्यान में जाता रहा और ऐसे ही मैं यहाँ भी आया परन्तु अब मेरा मन स्थिर और संतुष्ट हो गया है। अब कहीं भी जाने को मन नहीं करता बल्कि अभ्यास और पुरुषार्थ करने को ही मन करता है। अब मेरी भटकन बन्द हो गई है।

तीसरी बात यहाँ मैंने यह देखी है कि यहाँ का वातावरण बड़ा शुद्ध है और समझाने वालों का अपना जीवन बहुत उच्च है। इसलिए जो शिक्षा वह देते हैं वह हमारे मन में बैठ जाती है। मैंने यहाँ आने से पहले सुन रखा था कि यहाँ जादू है। कई लोग यह भी कहते थे कि यहाँ कोई जादू का सुरमा डाला जाता है। बहन जी, सचमुच ईश्वरीय ज्ञान का जादू तो यहाँ है ही और ज्ञान-अंजन तो यहाँ मिलता ही है। अब जिन्होंने यहाँ कम-से कम एक सप्ताह का ज्ञान नहीं सुना, वे क्या समझें कि यहाँ वह कौनसा जादू या सुरमा है कि जिससे मनुष्य की ईश्वर की लगन लग जाती है और उसके खान-पान तथा व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है, अर्थात् पवित्रता आ जाती है।

चौथी बात मैंने यह देखी है कि यहाँ का संग बड़ा अच्छा है। जैसे मैं अपनी धारणा को उच्च बनाने का पुरुषार्थ कर रहा हूँ, वैसे दूसरे भी अपने-अपने अनुसार यह पुरुषार्थ कर रहे हैं। सभी का अपने प्रेक्टीकल जीवन को अच्छा बनाने पर ध्यान

यह कैसे माना जाय कि यह ज्ञान परमात्मा शिव प्रजापिता ब्रह्मा के तन में प्रविष्ट होकर दे रहे हैं?

ब्रह्माकुमारी—मैंने यह पहले भी स्पष्ट किया है कि परमात्मा किसी माता के गर्भ से, किसी मनुष्य के बीज से जन्म नहीं लेते बल्कि वह तो किसी साधारण मनुष्य के तन में प्रविष्ट होते हैं। अतः परमपिता परमात्मा के दिव्य अवतरण की यह सबसे बड़ी पहचान है क्योंकि अन्य मनुष्य, साधु, सन्त, तथा-कथित गुरु इत्यादि जो स्वयं को परमात्मा का अवतार घोषित करते हैं, यह नहीं कह सकते कि उनका जन्म माता के गर्भ से नहीं हुआ और यदि वे यह कहें कि परमात्मा ने उनकी काया में प्रवेश किया है तो वे विवेक-संगत और युक्ति-युक्त रीति से यह नहीं बता सकते कि परमात्मा कहाँ से अवतरित हुए हैं, उनका क्या स्वरूप है, वह किस ईश्वरीय कार्य-अर्थ यहाँ आए हैं, उस कार्य को वह कैसे सम्पन्न करेंगे, भविष्य में उनका क्या कार्यक्रम है, आदि-आदि। अतः पहले तो आप यह बताइए कि आप 'परकाय प्रवेश' के सिद्धान्त को मानते हैं या नहीं?

जिज्ञासु—'परकाय प्रवेश' के सिद्धान्त को तो मैं मानता हूँ। कई बार कोई अशुद्ध आत्मा भी किसी के तन में प्रवेश करती है, फिर शंकराचार्य द्वारा परकाय प्रवेश का वृत्तान्त तो भारत में प्रसिद्ध है। उसे तो सनातन धर्मी, वेदान्ती और आर्यसमाजी सभी लोग मानते हैं। शंकराचार्य की जीवन-कहानी में लिखा है कि राजा अमरूक जंगल में शिकार खेलने गए थे, वहाँ उसकी मृत्यु हो गई। शंकराचार्य अपने शिष्यों-सहित जंगल में जा रहे थे, तब उन्होंने गृहस्थ का अनुभव करने के विचार से अपना संन्यासी [illegible] वाला शरीर छोड़कर राजा अमरूक के तन में प्रवेश किया और राजा की नगरी में चले गए। वहाँ उन्हें कुछ दिनों के बाद लौटते देखकर सभी खुश हुए। इधर इनके संन्यासी वेश वाले तन की उनके शिष्यों ने रक्षा की जब तक कि उसमें वह आत्मा वापस लौट आए।

ब्रह्माकुमारी—अच्छा, यह बताइए कि राजा अमरूक की नगरी के लोगों ने कैसे पहचाना कि राजा के तन में परकाय प्रवेश है?

जिज्ञासु—एक तो रानियों ने यह अनुभव किया कि अब इसमें वैराग्य के संस्कार हैं और इसके संस्कार तथा स्वभाव राजा अमरूक से बिल्कुल भिन्न हैं। राजा तो खाने-पीने का और विषय-भोग का प्रेमी था, परन्तु अब रानियों ने इसमें अन्तर पाया। अतः उन्होंने सोचा कि हो न हो यह किसी दूसरी आत्मा का प्रवेश है। मन्त्रियों ने भी देखा कि अब राजा पहले जैसा नहीं है, अब उसकी निर्णय-शक्ति

[illegible] ऐसा ही स्वभाव था है। इनका मन्त्री 'आत्म-ज्ञानी' [illegible] कि यह राजा की आत्मा नहीं है बल्कि राजा के तन में किसी [illegible] आत्म-ज्ञानी की आत्मा का प्रवेश है। बहन जी, इस बात की परीक्षा [illegible] इनको [illegible] आचार्य का शरीर जगल में ढूंढवा डाला।

[illegible] कि जब किसी में कोई अशुद्ध आत्मा प्रवेश करती है [illegible] करती या ऐसे कर्म करती है जो कि पहले उस मनुष्य के लक्षणों से [illegible]। [illegible] ही यह परिवर्तन देखकर मनुष्य निर्णय करता है कि इसमें [illegible] दूसरी [illegible] का प्रवेश है।

ब्रह्माकुमारी—[illegible] आप सोचिए कि परमपिता परमात्मा को भी इन [illegible] [illegible] नहीं सकते। [illegible] आँखों से तो आप यह भी नहीं देख सकते कि [illegible] शरीर में आत्मा है। [illegible] शरीर में 'चैतनता' नामक गुण को देखकर [illegible] कि शरीर में आत्मा है। फिर जिस व्यक्ति की जैसी चालचाल, [illegible] संस्कार, [illegible] आचार आदि होता है, उससे आप समझते हैं कि इस [illegible] में [illegible] आत्मा विराजमान है। यदि आचार-विचार [illegible] [illegible] आप [illegible] कि यह 'महात्मा' है। [illegible] आचार्य के [illegible] प्रवेश को भी राजा के मन्त्री ने [illegible] [illegible] देखकर माना कि उसमें किसी [illegible]

जिज्ञासु—[illegible], परमात्मा तो [illegible] [illegible]

ब्रह्माकुमारी—[illegible]

[illegible]

[illegible]

लक्षण दिखाई देते हैं। **उनके मुख से जो वाक्य निकलते हैं, उनमें जो ज्ञान होता है, वह उस मनुष्य की जानकारी और समर्थ से बाहर होता है।** इसलिए उनके कुछ प्रभु-प्रेमी स्वजन सोचने लगते हैं कि इसमें किसी का परकाय प्रवेश है। परमपिता परमात्मा उसके मुख द्वारा स्वयं ही धीरे-धीरे अपना परिचय भी देते हैं और **उस मनुष्य के जन्म-जन्मान्तर की भी विवेक-संगत कहानी** बताते हैं, जिस मनुष्य में वह प्रवेश करते हैं। परमात्मा के उन महावाक्यों को सुनकर वह मनुष्य, जिसके तन में परमात्मा प्रविष्ट होते हैं, स्वयं अपने बारे में भी ज्ञान प्राप्त करता है और परमपिता परमात्मा के बारे में भी और उनकी दी जा रही आज्ञाओं के अनुसार अपने जीवन को भी ढालता जाता है। संसार में इस बात का कोई भी व्यक्ति स्वांग नहीं रच सकता कि वह अपने भी जन्म-जन्मान्तर की कहानी बना सके और स्वयं में प्रविष्ट होने वाले का भी ऐसा विवेक-युक्त परिचय दे सके।

जिज्ञासु—जब परमात्मा मनुष्य तन में प्रविष्ट होते हैं तो उनके ज्ञान में कौन-कौन से गुण या लक्षण व्यक्त होते हैं?

तीनों कालों और तीनों लोकों का ज्ञान; ज्ञान भी अद्भुत

ब्रह्माकुमारी—परमात्मा **ज्ञान के सागर** हैं, त्रिकालदर्शी हैं, त्रिलोकीनाथ हैं और **पतित-पावन** हैं। अतः उस मनुष्य के मुख द्वारा परमात्मा जो ज्ञान देते हैं, वह ज्ञान ही अन्य मनुष्यों द्वारा दिए ज्ञान से **निराला** होता है। वह 'प्रायः लुप्त ज्ञान' और 'प्रायः लुप्त योग' सिखाते हैं, जैसे कि गीता में भी कहा गया है। उनके महावाक्यों में **तीनों कालों** का और **तीनों लोकों का** ज्ञान समाया होता है और कोई भी आत्मा **अनुभव सहित** तीनों लोको का ज्ञान नहीं दे सकता और यह तो वह कह ही नहीं सकता कि "**मैं** तुम्हें परमधाम ले चलूँगा।" अन्य कोई भी आत्मा सृष्टि की स्थापना, विनाश और पालन का या ८४ **जन्मों की कहानी** का सही ज्ञान नहीं दे सकता। कोई भी आत्मा सृष्टि रूपी **उल्टे वृक्ष** का या चक्र तथा उसकी पुनरावृत्ति का परिचय नहीं दे सकता और यह नहीं कह सकता कि "निकट भविष्य में महाविनाश होने वाला है" आदि और वह उस कथन का अग्रिम स्पष्टीकरण, उसकी ऐतिहासिक व्याख्या या आध्यात्मिक आवश्यकता नही समझा सकता, न ही उसका दिव्य साक्षात्कार करा सकता है।

कोई भी आत्मा यह नहीं कह सकता कि "मैं तुम्हें **मनुष्य से देवता** बनाऊँगा, मैं दैवी सम्प्रदाय की स्थापना के लिए अवतरित हुआ हूँ, मैं भारत को स्वर्ग बनाऊँगा, मैं तुम्हें **पापों से मुक्त** कराऊँगा, मैं सृष्टि रूपी **वृक्ष का बीज** रूप हूँ, देवों का भी देव

बहन जी, एक बात और भी बताइये। मेरे मन में एक सवाल आया है कि परमात्मा शिव किस भाषा में ज्ञान सुनाते हैं?

ब्रह्माकुमारी–आपने अभी शंकराचार्य के परकाया प्रवेश का उदाहरण दिया था, वह जब राजा के तन में प्रविष्ट हुआ था तो वह किस भाषा में बोलता था?

जिज्ञासु–उसी भाषा में जो पहले राजा की भाषा थी।

ब्रह्माकुमारी–तो आपको मालूम होना चाहिए कि परमपिता परमात्मा शिव भी जिस मनुष्य के तन मे प्रविष्ट होते हैं, उसी की भाषा में ही वह बोलते हैं ताकि वह मनुष्य भी उस ज्ञान को समझ सके। कर्मेन्द्रियाँ तो उसी मनुष्य ही की होती हैं, परमपिता परमात्मा उसी की ही सामान्य, सरल और आम बोलचाल वाली हिन्दी भाषा में बोलते हैं जिसे बहुत लोग समझ सकें और जिससे भावों को ठीक प्रकार से स्पष्ट भी किया जा सके। फिर शंकराचार्य की आत्मा तो राजा के शव में प्रविष्ट हुई थी, जबकि उसमें राजा की आत्मा तो थी नहीं परन्तु परमात्मा शिव जिस मनुष्य तन में प्रविष्ट होते हैं, उसमें तो ब्रह्मा की आत्मा भी होती है और परमात्मा शिव भी स्थायी रीति से प्रविष्ट नहीं रहते। अतः परमात्मा के सन्निवेश को समझने के लिए बहुत ज्ञान-निष्ठ बुद्धि चाहिए।

जिज्ञासु–अच्छा, बहन जी, एक पहचान तो आपने यह बतायी कि मनुष्य के द्वारा दिये गये ज्ञान में तीनों लोकों, तीनों कालों तथा ८४ जन्मों का विवेक-सम्मत ज्ञान भरा होगा जो कि अल्पज्ञ और जन्म-मरण में आने वाली आत्मा नहीं दे सकती। दूसरी कौन-सी बात आप बता रही थीं?

ईश्वरीय ज्ञान का व्यक्तिगत जीवन पर प्रभाव

ब्रह्माकुमारी–एक परमात्मा को ही **'पतित-पावन'** कहा गया है। एक शिव को ही **'कामारि'** अर्थात् **'काम विकार नाश करने वाला'** माना गया है। अतः उनका अवतरण होने पर उनकी यह एक मुख्य पहचान है कि वह मनुष्य के तन से काम को कुरेद-कुरेद कर निकाल देते हैं और उन्हें यह शिक्षा देते हैं कि वे घर-गृहस्थ में रहते हुए भी काम को **'बिल्कुल'** ही निकाल और पछाड़ दें क्योंकि अब उन्हें **सतयुगी, योगबल वाली, पावन, दैवी सृष्टि की स्थापना करनी है। वे अहिंसा** और दैवी-गुणों की धारणा का ऐसा स्पष्ट और उच्च आदर्श मनुष्य-मात्र के सामने रखते हैं कि अन्य कोई रख नहीं सकता। इससे मनुष्यात्मा **को पूर्ण पवित्रता और अतीन्द्रिय** सुख का इसी जीवन में लाभ होता है, क्योंकि **परमात्मा** पवित्रता, सुख और शान्ति के दाता हैं। मनुष्य या तो गृह [illegible] लि

को जीतना असम्भव बताते हैं और कहते हैं कि ऋषि-मुनि भी इसे नहीं जीत सके और या वे कहते हैं कि काम-विकार तो संसार में शुरू से ही चला आया है अथवा कि लीला में विकार और भोग का हर्ज नहीं है। परन्तु परमात्मा शिव परकाय प्रवेश करके मनुष्य को कामजीत बनाते हैं और स्वर्गिक सुख देने वाला सर्वोत्तम ज्ञान देते हैं।

इस प्रकार आप देखेंगे कि परमात्मा द्वारा दिए गये ज्ञान में आचार की श्रेष्ठता की भी सर्वोच्च पराकाष्ठा होती है। उसके ज्ञान से मनुष्य का देह-अभिमान दूर-दूर होने लगता है, मनुष्य आत्मनिष्ठ बनता जाता है। वह सपत्नीक जीवन व्यतीत करते हुए भी काम-वासना से या तो प्रभावित नहीं होता या उससे युद्ध करने में सफल होता है या कम-से-कम उसका सामना करने की हिम्मत तो उसमें आती ही है। परमात्मा जो योग स्वयं सिखाते हैं, उससे मनुष्य की अवस्था एक-रस और विदेही होने लगती है और उसे इस कलियुगी तमोगुणी संसार की असारता तथा भावी विनाश के परिचय की ऐसी घुट्टी पिलाई जाती है कि उसका मन उपराम हो जाता है, दृष्टि आत्मिक होती जाती है, आहार सात्त्विक होता जाता है, जीवन संयमी होता जाता है, व्यवहार दैवी होता जाता है, कर्मेन्द्रियाँ वश में होती जाती हैं, बुद्धि भी नग्न विषय-विकारों से हटकर परमात्मा में जुटती जाती है; स्वभाव में मिठास आने लगता है और वह पुरुष दूसरों की ज्ञान-सेवा करने में तत्पर रहता हुआ कमल के पुष्प के समान जीवन व्यतीत करने लगता है। अब यह विशेषताएँ आप इस ईश्वरीय-ज्ञान में पाते हैं या नहीं, यह आप सोचिये और यहाँ आने वाले दूसरे नर-नारियों का अनुभव सुनकर भी, उनके जीवन में क्या उन्नति हुई, वे कैसे जीवन में पावन बन रहे हैं, ये सुनकर भी निर्णय कीजिये। इतने युगलों को आज तक किसने इस प्रकार पवित्र अर्थात् ब्रह्मचर्य-युक्त और सात्त्विक आहार-व्यवहार वाला बनाया है?

जिज्ञासु—बहन जी, यह तो मैं अपने जीवन में भी अनुभव करता हूँ। इन्हीं सात दिनों में भी मेरे जीवन में अन्तर आया है और दूसरे भी कुछ-एक बहन-भाइयों का अनुभव तो मैंने सुना है और यहाँ के वातावरण तथा व्यवहार और आचार की श्रेष्ठता से तो मैं खासतौर से प्रभावित हूँ। आपने यह भी ठीक कहा है कि यह किसी मनुष्य से सम्भव नहीं कि वह इतने नर-नारियों को गृहस्थ-जीवन में कामजीत बना सके अर्थात् ब्रह्मचर्य-व्रत में स्थित रख सके। निःसंदेह काम महा-शत्रु पर विजय प्राप्त कराने की सामर्थ्य तो एक परमपिता परमात्मा में ही हो सकती है। बहन जी, किन्हीं लोग इस संस्था की यह आलोचना करते हैं कि यह संस्था

काम-विकार को छुड़ाती है परन्तु वास्तव में यह इसकी श्रेष्ठता है, यह तो इसके कार्य में परमपिता परमात्मा के हाथ को सिद्ध करती है। ब्रह्मचर्य के बिना तो परमपिता परमात्मा को पहचाना ही नहीं जा सकता, न उससे योग लगाया जा सकता है--यह तो सभी शास्त्र भी कहते हैं। अच्छा तीसरी बात कौनसी है?

परमपिता परमात्मा की पहचान

ब्रह्माकुमारी--देखिये, सभी इस बात को मानेंगे कि लौकिक पिता की पहचान यह है कि वह व्यावहारिक रीति से **पिता जैसा स्नेह** और **पैतृक सम्पत्ति** (Fatherly inheritance) प्रदान करता है। एक शिक्षक की पहचान यह है कि वह **शिक्षा** देता है। इसी प्रकार कल्याणकारी परमात्मा, जिसके बारे में 'त्वमेव माताश्च पिता त्वमेव' आदि छन्द गाये जाते हैं, की पहचान यह है कि वह सभी नर-नारियों को **आत्मिक दृष्टि से देखते हुए**, **उन्हें अपनी अविनाशी संतान मानते हुए** वैसा ही शुद्ध और कल्याणकारी प्यार देता है जैसा कि लौकिक में पिता अपने वत्सों को और शिक्षक अपने विद्यार्थियों को देता है। वह मनुष्यात्माओं को ऐसे **स्नेह** से और **सहानुभूति** से इतनी **कल्याणकारी** शिक्षा देता है कि जिससे मनुष्य सहज ही विकारों के कीचड़ से निकलता जाता है और **प्रभु-मिलन के सुख** का अनुभव करता है; उसे परमात्मा द्वारा रची सतयुगी-सृष्टि अर्थात् स्वर्ग के सुखों का किंचित अनुभव यहाँ ही हो जाता है। परन्तु उस आत्मिक सुख के अनुभव का अधिकार उसे ही मिलता है जो कि आत्मिक दृष्टि (Soul-Consciousness) को अपनाता है, देह-अभिमान को त्यागता है और 'काम-वासना' को महा-शत्रु मानकर पवित्र रहता है तथा एक परमपिता परमात्मा से ही प्रीति जोड़ता है। तो आप मानेंगे कि अन्य कोई भी आत्मा सभी आत्माओं को **'पुत्र-दृष्टि'** से नहीं देख सकती और उन्हें **माता-पिता**, बन्धु, शिक्षक औस सद्गुरु नाम से जो सम्बन्ध जाने जाते हैं, उन सभी का सुख नहीं दे सकती। ये तो आप सभी आगे चलकर अनुभव भी करेंगे।

जिज्ञासु--जी, बहन जी, उस परमपिता द्वारा आत्मिक-सुख ही तो मैं चाहता हूँ। बहन जी, आत्मिक-दृष्टि और शुद्ध-प्यार तो मैं यहाँ भी बहन-भाइयों में देखता हूँ। आज संसार में सगे भाइयों में भी वह प्यार नहीं है जो कि निःस्वार्थ स्नेह मैं यहाँ देखता हूँ। अतः प्यार के सागर परमात्मा ही ने इतना स्नेह-युक्त सभी को बनाया होगा-ऐसा आभास तो मुझे होता है।

दिव्य दृष्टि द्वारा साक्षात्कार

पाँचवीं बात यह है कि परमपिता परमात्मा **दिव्य-दृष्टि द्वारा साक्षात्कार** भी कराते हैं। परन्तु साक्षात्कार के लिए भी पात्रता की आवश्यकता होती है। गीता में भी स्पष्ट उल्लेख है कि भगवान् ने साक्षात्कार भी कराया और बताया भी कि–"मैं प्रवेश होने योग्य हूँ; इस तन में अवतरित हुआ मैं परमात्मा हूँ।" और उन्होंने यह भी कहा कि–"तू मुझे **अति-प्रिय** है, इसलिए तुझे ही दिव्य-दृष्टि देकर मैं दिव्य-साक्षात्कार करा रहा हूँ।" इससे स्पष्ट है कि भगवान् साक्षात्कार भी उसी व्यक्ति को कराते हैं जिसमें उसके अनुकूल भक्ति-भाव के संस्कार हों या किन्हीं पूर्व कर्मों का उसे कोई फल देना हो या जिसके लिए जिस किसी कारण से वे भी उचित समझें। **साक्षात्कार के वरदान के लिए कोई उन्हें विवश नहीं कर सकता।** अस्तु, हममें से अनेक बहन-भाइयों ने यहाँ कई बार परमपिता परमात्मा शिव के, परमधाम के, सूक्ष्म ब्रह्मा के तथा परमात्मा के दिव्य प्रवेश आदि के दिव्य साक्षात्कार भी किए हैं।

और फिर बात यह है कि आप लोग तो परमात्मा को सर्वव्यापक मानते रहे हो, आपके पूर्व मन्तव्य के अनुसार तो परमात्मा सबमें प्रविष्ट हैं ही; अतः अब जब हम यह कहते हैं कि 'प्रजापिता ब्रह्मा के तन में उनका प्रवेश होता है' तब भला क्यों आपके मन में प्रश्न उठता है? पहले जब सर्वव्यापक मानते थे तब कभी प्रश्न क्यों नहीं उठता था?

जिज्ञासु–बहन जी, सारा स्पष्टीकरण होने से अब इस बात पर मेरा पूर्ण-निश्चय बैठता है और कि निस्सन्देह, ज्ञान-दृष्टि द्वारा यह सब पहचान हो सकती है। अब मैं मानता हूँ कि इस ईश्वरीय विश्वविद्यालय की स्थापना स्वयं परमपिता परमात्मा शिव ने प्रजापिता ब्रह्मा के तन में दिव्य-प्रवेश करके की है।

बहन जी, मैंने सुना है कि प्रजापिता ब्रह्मा के तन में परमपिता परमात्मा शिव प्रवेश करके जो महावाक्य उच्चारण करते हैं, उन्हें यहाँ '**मुरली**' कहा जाता है और उसकी लिखित प्रतियाँ यहाँ आपके पास आती हैं। मुझे यह सुनने का और क्लास में आने का मौका कब मिलेगा?

ब्रह्माकुमारी-आप कल आइए, मैं आपको 'मुरली' की प्रति पढ़कर सुनाऊँगी और क्लास में क्या होता है, यह भी बताऊँगी, उसके बाद आप क्लास में प्रतिदिन भी आ सकते हैं।

ईश्वरीय विश्वविद्यालय की क्लास

जिज्ञासु—बहन जी, आपने कहा था कि आप यहाँ की क्लास के बारे में कुछ जानकारी देकर मुझे उसमें सम्मिलित होने की स्वीकृति देंगी।

ब्रह्माकुमारी—जी हाँ! हमारी प्रातःकाल की क्लास पाँच बजे प्रारम्भ होती है। विद्यार्थी स्नान आदि करके पाँच बजे क्लास में आते हैं और सबसे पहले ज्योतिस्वरूप, परमपिता परमात्मा शिव की स्नेह-युक्त स्मृति में स्थित होने का अभ्यास करते हैं। इसे हम 'योग' की क्लास अथवा 'याद की यात्रा' कहते हैं। लगभग पौना घण्टा इस प्रकार योगाभ्यास होता है। चूँकि क्लास में आने वाले विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का, आहार की शुद्धि का तथा अन्यान्य नियमों का पालन करने वाले ही होते हैं, अतः जब वे सभी एक-मन होकर सिर्फ एक ज्योतिस्वरूप परमपिता परमात्मा की याद में मग्न होते हैं तो क्लास में एक बहुत ही सात्त्विक और आध्यात्मिक वातावरण बन जाता है जो कि अभ्यास के लिए अनुकूल और सहायक होता है।

जिज्ञासु—जैसे कई लोग मन की एकाग्रता या तन्मयता के लिए संगीत या कीर्तन आदि करते हैं या कोई धुन(Tune) करते अथवा 'ओ३म्' का उच्चारण करते हैं, वैसे यहाँ भी कुछ होता है? प्रसिद्ध है कि मीरा भी गिरधर गोपाल की याद में स्वर का सहारा लिया करती थी। कई सन्यासी नदी के तट पर ऐसे स्थान पर जाकर बैठते हैं कि जहाँ पर्वत से पानी की लहरें गिरने से एक ऐसा स्वर होता हो कि संसार के दूसरे स्वर उन्हें सुनाई नहीं दे सकें।

ब्रह्माकुमारी—यहाँ पर ट्यून (Tune) या धार्मिक गीत का कोई रिकार्ड बजा दिया जाता है, विद्यार्थी उस गीत के आध्यात्मिक अर्थ पर मनन करते हुए परमात्मा की याद और प्रेम में अपने मन को लगाये रखते हैं। वे स्वयं मुख से कुछ नहीं बोलते बल्कि गीत से भी ज्ञान का आधार लेकर शिव परमात्मा के ईश्वरीय गुणों का, उनसे अपने सम्बन्ध का और प्यार का हृदय-पूर्वक मनन-चिन्तन ही (सूक्ष्म रीति से) करते हैं। परन्तु इस प्रकार ट्यून या संगीत अनिवार्य नहीं है, यह तो सहायक है। इस आधार को भी एक दिन छोड़ना होगा क्योंकि आखिर तो हम आत्माओं को दुनिया से परे जाना है और निरन्तर योग लगाने का अभ्यास करना है और निरन्तर कार्य करते हुए तो गीत इत्यादि का आधार नहीं मिल सकता। यहाँ विद्यार्थी ओम् का शब्द उच्चारण नहीं करते बल्कि उसके अर्थ-स्वरूप में टिकते हैं,

अर्थात् "मैं आत्मा हूँ, परमपिता परमात्मा की सन्तान हूँ"–इस भाव अथवा स्थिति में टिकते हैं।

जिज्ञासु–कई लोगों का विचार है कि योग का अभ्यास किसी निर्जन स्थान पर जाकर करना चाहिए और आँखें मूँदकर करना चाहिए।

ब्रह्माकुमारी–जंगल में मनुष्य नहीं होंगे परन्तु पशु-पक्षी, जीव-जन्तु तथा वृक्ष तो होंगे ही? अतः मनुष्य सामने न होकर जड़-जंगम या पशु-पक्षी हुए, इससे विशेष क्या अन्तर पड़ा? बात तो सारी यह है कि **मन निर्जन होना चाहिए** अर्थात् मन में किसी अन्य की स्मृति न होकर एक ही ज्योतिस्वरूप परमात्मा की याद होनी चाहिए। इसके लिए तो लग्न पक्की चाहिए, और लग्न तभी होती है जब ज्ञान द्वारा मोह नष्ट होकर मनुष्य के मन में एक शिव परमात्मा ही के लिए सच्चा प्यार जाग जाता है। **आँखें मूँदना भी कच्ची लग्न का सूचक है**। वास्तव में ये आँखें खुली होते हुए भी यदि हमारा तीसरा नेत्र अर्थात् ज्ञान-नेत्र खुला हो तो हमारा मन कहीं भी नहीं भटक सकता। अतः हम सहज रीति से बैठते हैं परन्तु जो ईश्वरीय-ज्ञान हमें मिला है, उसके आधार पर हम एक परमपिता परमात्मा शिव की स्मृति में लवलीन होते हैं। जबकि परमात्मा शिव ने हमें इतना ज्ञान-खज़ाना दिया है और उससे हमारा जीवन उच्च बन रहा है तथा उससे हमारे जीवन में पवित्रता और शान्ति प्राप्त हुई है, तो हमारा मन क्यों न परमात्मा की ओर जायेगा? आँखें खुली होने पर परमात्मा की स्मृति का हमें अभ्यास होगा, तभी तो हम चलते-फिरते, कार्य-व्यवहार करते हुए भी परमात्मा की स्मृति का आनन्द ले सकेंगे वरना तो क्लास से उठते ही और आँखें खुलते ही योग भी टूट जायेगा। अगर कोई व्यक्ति ईश्वरीय याद के विचार से बाज़ार में आँखें बन्द करके चलेगा तब तो उसकी ताँगे या मोटरकार से टक्कर हो जायेगी ओर योग के बजाय उसके घर में तो वियोग का वातावरण हो जायेगा। तो जबकि अब कर्म करते हुए भी परमपिता शिव को याद करना है तो आपको आँखें बन्द करने की ज़रूरत नहीं। हाँ, आप संसार को देखने वाले मन की आँखें बंद करो और उसके लिए ईश्वरीय-ज्ञान के संकल्प चलाओ।

जिज्ञासु–यह तो ठीक बात है, आपने इस विषय पर पहले भी थोड़ा प्रकाश डाला था। परन्तु क्लास को देखकर कोई भी नया व्यक्ति तो यह समझ ही नहीं सकेगा कि यहाँ योगाभ्यास हो रहा है क्योंकि यहाँ न प्राणायाम होता है, न कोई कष्ट-साध्य आसन, न कोई कीर्त्तन और न आँखें बन्द होती हैं, न किसी मन्त्र का उच्चारण ही होता है?

ब्रह्माकुमारी—हमें किसी को दिखाना थोड़े ही है कि हम योग-अभ्यास कर रहे हैं। हम तो अपनी मौज में ही परमपिता परमात्मा शिव की स्मृति में बैठते हैं। हम तो अपने पूर्व-जन्मों के विकर्म दग्ध करने के लिए तथा अविनाशी कमाई करने के लिए याद में बैठते हैं। यह पुरुषार्थ तो हम अपने लिए तथा विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिए करते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने पिता को याद करता है तो क्या किसी को दिखाने के लिए थोड़े ही करता है?

जिज्ञासु—ठीक जी, यह पुरुषार्थ हम करते तो अपने लिए ही हैं। बाहर से मनुष्य आँखें बन्द कर ले, किसी विशेष प्रकार का आसन जमा ले तथा प्राणायाम आदि भी करता रहे और मन उसका भटकता रहे, उसे तो दम्भ या मिथ्याचार ही कहा जायेगा, उसे 'योग' तो नहीं कहा जायेगा। उसकी बजाय तो इस प्रकार साधारण रीति से बैठकर परमपिता परमात्मा से योग लगाना बहुत अच्छा है। क्या योग के समय स्मृति या दृष्टि के अतिरिक्त और भी कुछ होता है?

ब्रह्माकुमारी—योग के अभ्यास के समय हमारे यहाँ प्रायः ब्रह्मलोक के ब्रह्म-ज्योति-तत्त्व का प्रतीक 'लाल प्रकाश' किया जाता है। इससे यह लाभ होता है कि बैठे ही जिज्ञासी का मन इस संसार को भूलकर ब्रह्मलोक में ब्रह्म-तत्त्व के पार परमपिता परमात्मा शिव की ओर जाता है। आप देखते हैं कि चौराहों पर ट्रैफिक सिग्नल (Traffic-signal) भी जब लाल रोशनी दिखाता है तो उस ओर जाने वाला ट्रैफिक रुक जाता है। रेलगाड़ी का गार्ड जब लाल झण्डी या लालबत्ती दिखाता है तब उसे देखकर ड्राईवर भी गाड़ी रोक लेता है। जब कहीं सड़क इत्यादि की मरम्मत हो रही होती है तो वहाँ भी मजदूर लोग लाल झण्डी या लालबत्ती लटका देते हैं ताकि कोई रथ या मोटर आ रहा हो तो वहाँ से मुड़ जाये अथवा रुक जाये। इसी प्रकार यहाँ भी जो लाल रोशनी होती है, वह इस बात की संकेतक है कि हमें [illegible] संकल्पों की रेल-पेल नहीं चलानी है, अब लौकिक विचारों का आवागमन (traffic) रोक देना है और मन को परमपिता परमात्मा की [illegible] शान्तिदायक स्मृति में स्थित करना है, अब इस [illegible] ब्रह्मलोक के प्रकाश तत्त्व में ही आत्मा की कर्मातीत [illegible]। आप जानते हैं कि निर्जन-स्थान में योगी को योग का [illegible] निर्जन-स्थान तो ब्रह्मलोक ही है, जहाँ पर न [illegible] आदि होते हैं। वहाँ तो 'ब्रह्म' नाम वाले [illegible] आनन्द के सागर, प्रेम के सागर, परमप्रिय [illegible]। वहाँ न ध्वनि है, न कर्म, बल्कि शान्ति ही

[illegible]

ब्रह्माकुमारी—यह मुरली लीजिये, मुरली [illegible] और परमात्मा [illegible] शिव की [illegible]।

ज्ञान मुरली

यह [illegible] है। काम करते हुए बाप को याद भी करना है

ब्रह्माकुमारी—यह "बाप" शब्द किसके लिए आया है?

जिज्ञासु—परमपिता परमात्मा शिव के लिये।

ब्रह्माकुमारी—हाँ, ठीक है। अच्छा, आगे सुनो। "काम करते हुए भी बाप को [illegible] याद करना है। इसमें प्रैक्टिस बहुत अच्छी चाहिए। वरना विकर्मों से [illegible]। मान लीजिये कि कोई क्रोध में आकर आपस में लड़ने-झगड़ने हैं तो समझो कि इनको शिव बाबा की याद नहीं है। तो समझ लो कि निर्विकारी बनने के लिये अपनी बुद्धि 'बाप' की याद में लगानी है। कोशिश ऐसी करनी चाहिए कि हम आत्म-अभिमानी बनें। देह-अभिमान में कुछ-न-कुछ उल्टा काम हो जाता है। इस याद से तुम बहुत शीतल बन जाओगे। पाँच विकार तुम्हारे मन से निकल जायेंगे। बाप की याद से बहुत शक्ति मिलेगी। अपना कामकाज भी करना [illegible] में करना है। वह समय भी आयेगा जब तुम बच्चे पूरी तरह अन्तर्मुख हो जायेंगे। तब आपको सिवा बाप (शिव परमात्मा) के और कुछ याद नहीं आयेगा।"

[illegible] हम परमधाम से इस संसार में आये थे तब किसी की याद नहीं थी। [illegible] और बड़े हुए तब पता चला कि यह हमारे शरीर के माता और पिता हैं और इन्हीं-इन्हीं व्यक्तियों के साथ हमारा पहला सम्बन्ध है। तो फिर [illegible]। "हम एक बाप के (अर्थात् परमात्मा शिव के) हैं"—यह [illegible]। सच्चे योगी के मन में बाप के सिवा और किसी की लगन नहीं होनी चाहिए।

[illegible] नहीं है। कोशिश करनी चाहिए कि घर में [illegible] शान्ति [illegible] शान्ति का वर्सा ले रहे हो ना। इसलिए [illegible] भी [illegible] बनो। [illegible] अच्छे और बुरे संस्कार [illegible] है। तो अब यह ज्ञान-सागर बाबा अपने [illegible] संस्कार धारण करो। जो ज्ञान बहुत ज्ञान-सागर के [illegible] धारण करो तब आत्मा यह ज्ञान [illegible]। जैसे [illegible] वैसे ही तुम्हें आत्मा भी [illegible]।